भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता
NATIONAL LIBRARY, CALCUTTA

H

वर्ग संख्या
Class No 891.432

पुस्तक संख्या
Book No P2331

रा० पु०/N. L. 38.
MGIP Sant. 45 NL (Spl/69) —4-8-69—1,00,000.

दूसरा मोड़

(उपन्यास)

शारदा प्रकाशन
महरौली, नई दिल्ली - ११००३०

दूसरा मोड़

- तारापदत्त

H
891.432
P 2331

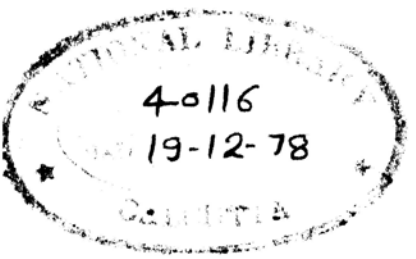

© तारा पाल ।। प्रथम संस्करण १९७८ ।। शारदा प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-११०००३०, द्वारा प्रकाशित ।। सोहन प्रिंटिंग सर्विस, शाहदरा, दिल्ली-११००३२ द्वारा मुद्रित ।। मूल्य दस रुपये

Doosara Maur (Novel)
Tara Paul

Rs. 10.00

"दरवाज़ा खोलो बेटा"—आवाज ने किशन को जैसे चौंका-सा दिया. वह अन्दर कमरा बन्द करके व्यायाम कर रहा था. एकदम कमरे के दूसरे कोने पर लगी कील से अपनी कमीज उठाने लगा. किशन की माँ ने अन्दर प्रवेश करते ही जान लिया कि उसका बेटा क्या कर रहा था. माँ ने करीब जाकर उसका माथा चूम लिया और स्नेह-भरी आँखों से उसे देखने लगी. आँखें आँसुओं से नम हो गयी. "बेटा, काश ! आज तेरे पिता होते तो देखकर कितने प्रसन्न होते !"—अभी ये शब्द पूरे भी न निकल पाए थे कि आँसुओं की धार उसके कपोलों को चीरती हुई नीचे गिर गई. किशन ने अपनी माँ के आँसू पोंछते हुए कहा, "माँ ! जानती हो, इन आँसुओं की कितनी कीमत है ? ये आँसू मेरे उदास जीवन में शबनम हैं. आपके दुख मेरी उपासना के प्रतीक हैं."—वह भी उदास-सा हो गया. उसने माँ के आँसू पूजा के फूलों की तरह समेट लिए और अपने माथे पर उनका तिलक लगा लिया—"माँ, अब हमारे दिन बदलने लगे हैं. मैं बड़ा हो गया हूँ और आपने मुझे इस काबिल बना दिया कि जीवन में हर संघर्ष का सामना कर सकता हूँ. अब चिन्ता क्या ? माँ, मुस्कराओ !" माँ ने किशन को छाती से लगा लिया और नाश्ता करने को कहा.

किशन बाहर खड़ा लुसी को पुचकार रहा था. अपने इस वफादार जानवर से बेहद प्रेम था उसे. एक वर्ष पहले ठिठुरती जाड़े की रात में एक गली में कराहता हुआ पाया था और उसे अपने घर ले आया था. घर में माँ, बेटा और उनका कुत्ता ही था. रसोई में चौकी पर बैठते हुए किशन

बोला, "लाओ माँ, जरा जल्दी है." खाने की प्लेट से एक रोटी अलग लुसी को दी और एक ग्रास अपनी माँ की ओर बढ़ाते हुए बोला, "लो माँ, पहले तुम खाओ !" माँ जानती है कि यह किशन की आदत है. इसलिए उसने ग्रास मुँह में ले लिया. खाना समाप्त कर चुकने के बाद किशन अपने कमरे में कपड़े बदलने चला गया. सफेद पैंट के ऊपर गुलाबी रंग की कमीज, सिर पर काली टोपी पहन ली. उसके पास कालिज के लिए सिर्फ विशेष तीन ही जोड़े थे जिनको बदल कर वर्ष-भर गुजारा करता था. परन्तु वह जो भी पहनता उसके गोरे रंग, चौड़े सीने और गठीले शरीर पर ऐसा लगता जैसे दुल्हा सजधज कर निकला हो. किशन किताबों की फाइल हाथ मे लिए आँगन में पहुँचा. माँ ने पाँच रुपये उसके हाथ में थमा दिये. वह अचम्भे-भरी निगाहों से अपनी माँ की मौन मूर्ति को निहारने लगा—बिल्कुल देवी का रूप ! उसके हृदय में विचारों के बादल मंडराने लगे. कुछ क्षण पश्चात् उसने माँ के हाथों को चूम लिया, कहा, "माँ, क्या कहूँ, क्या न कहूँ. आप मेरी माँ, बाप, भाई, बहन एक ही रूप में सबकुछ हो ! काश ! तुम्हारे-जैसी माँ सबको मिल सके !" उसका चेहरा कहते-कहते गम्भीर हो गया. "अच्छा माँ, इन पैसों की आज मैं दवाई लाऊँगा जो डाक्टर ने बताई है."

माँ ने उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा, "बेटा, मेरी दवाई तो तुम स्वयं ही हो. रोग तो उमरभर का है, कब तक दवाई का सहारा लेती रहूँ. तुम्हारे खाने-पीने के दिन हैं." उसकी आँखें सजल हो आयीं. —"बेटा, तुम्हारी माँ एक गरीब लाचार औरत है. तुम्हारा पालन-पोषण सुखमय नहीं कर सकी." किशन ने उसके होंठों पर ऊंगली रख दी और कॉलेज के लिए चल दिया. अभी दो कदम ही लिए थे कि उसने मुड़ कर देखा और कहा—"माँ, अगर देर हो जाए तो चिन्ता न करना." उसकी माँ जो मूर्ति बनी खड़ी थी, अपने स्नेह-भरे नयनों से किशन को निहारती रही. इन शब्दों ने उसे चौंका दिया जैसे मानो कोई सपना देख रही हो. अचानक नींद टूट गई और उसके ओंठ हिले—"बेटा, जल्दी आना···मैं अकेली··· मेरा जी नहीं लगता."

उनकी दिनचर्या किशन के कालेज जाने के पश्चात् गाय को पट्ठा डालकर बाहर बाँधना और उसके पश्चात् गोबर आदि की सफाई करके

घर के सामने जो उनके खेत थे, उनमें गोबर की खाद के लिये गड्ढा बना रखा था, वहाँ फेंक कर कुछ नाश्ता करती थी. उसके बाद पड़ोस में जो घर थे, महिलाओं के पास दुख-सुख बाँटने जाती थी क्योंकि घर में अकेले उसका जी ऊब जाता.

कभी-कभी गीता की पुस्तक निकाल कर पढ़ती. आज उसका मन उदास था. अकेलापन उसके दिल पर नश्तर चला रहा था. जलपान करने के पश्चात् चारपाई धूप में निकाल कर बैठ गयी, और गहरे विचारों में डूब गई. उसके मन में भाव उठ रहे थे कि क्यूँ न इस अकेलेपन में बात करने को साथी ढूँढ़ ले. बेटे की शादी करके बहू घर में ले आए तो इस छोटी-सी बगिया में बहार खिल उठे. बहू के पायल की आवाज से सूना वातावरण मधुर स्वर की धुन से गूँज उठे ! और फिर नन्हा-मुन्ना चाँद-सा लाल हो जाए. मैं उसकी सेवा करूँ. एक बार फिर किशन के बचपन की झलक नयनों में उतर आये. इन्हीं विचारों की उधेड़बुन में बैठी रही. फिर विचार की दूसरी लहर आती— मगर यह कैसे हो सकता है ! वह तो एक अबला नारी है, उसका मददगार कौन है ? न पैसा, न सम्बन्धी. बस दो टुकड़े जमीन व छोटा-सा मकान ही तो है जिसमें माँ-बेटा दोनों जमींदारी के दिनकाट रहे है. खून-पसीना बहा कर रात-दिन एक करके कुछ दाना पैदा कर लेते हैं जिससे आठ-दस महीने तक उनका गुज़ारा चल जाता है. ऐसी हालत में कैसे ला सकती है वह दुल्हन अपने लाल के लिए ! क्या उसका बहू देखने का सपना अधूरा ही रहेगा ? पर तालीम हासिल करके किशन भी तो काम करेगा. बस एक ही सहारा था, एक ही आशा थी, जो उसके टिमटिमाते जीवन की लौ को उत्साह देती, धैर्य देती. उसने अपना तन, मन, धन सब लगा दिया था अपने बेटे की पढ़ाई पर. उसकी आँख से एक बूँद आँसू गिर कर जमीन में पड़ा और मिट्टी में लुप्त हो गया. 'दुनिया ने क्या जुल्म न किए हम पर—फिर भी जीना है मुझे अपने बचन के लिए, अपने बेटे का जीवन सँवारने के लिए." उफ !···कितनी ज़ालिम है दुनिया ! भगवान ने हरएक को इन्सान बनाया है पर इन्सान ने अपनी हिकमत से एक-दूसरे से घृणा की दीवार इतनी मज़बूत बना ली कि उसी से टकरा कर हम अपना दम तोड़ देते हैं. .

अपने खून-पसीने से सींचा हुआ जो नन्हा-सा पौधा दुनिया में छाँव देने को तैयार हुआ तो उसे देखे बिन ही कहीं वह चल न बसे ! उसके हृदय का यह भाव न था, उसे अपनी मेहनत के फल का लोभ हो—परन्तु उसकी छत्रछाया में आने वाले शरणार्थियों को देखना चाहती है. अपने बेटे के यश, गौरव, महानता [का [अनुभव करना चाहती है, जैसे ग्रीष्म ऋतु में मरुस्थल में एक घना वृक्ष यात्रियों की आशा का प्रतीक बनता है, जिसकी छाँव तले सभी यात्री गर्मी के थपेड़ों से बचकर नवजीवन अनुभव करते हैं. वैसे ही उसका किशन जीवन का प्रतीक बने. सबके लिए, बिना स्वार्थ. कलुष से रहित एक ऐसी लौ जो भटके इन्सानों को राह दिखाये ! इसी तर्क का मंथन उसके मस्तिष्क में ज्वारभाटे की तरह हो रहा था. वह सोच में इतनी लीन हो गयी कि उसे आस-पास की वस्तुओं का भी आभास न हो रहा था. उसे अपने वह दिन याद आए जबकि वह लाचार थी. दुनिया ने कितने जुल्म-सितम ढाये, उसकी मजबूरी का नाजायज फायदा उठाया. उसके मस्तिष्क में अतीत की एक तस्वीर चलचित्र की भाँति घूम गई.

एक रात वह अपने बड़े मकान में सोई हुई थी, बगल में नन्हा-मुन्ना किशन था. बाहर जोरों की बारिश हो रही थी. बादल की गर्ज की आवाज इतनी क्रूर—न-जाने किस पर वज्र पड़े ! बारिश की टप-टप किसी की दुनिया स्याह करने पर तुली थी.

अचानक ही दरवाजे पर दस्तक हुई—'उपासना'. किशन की माँ उपासना पति के इन्तजार में थी, दस्तक सुनते ही मुस्कराने लगी. दरवाजे की ओर लपकी. दरवाजा खोलते ही उसने जो देखा, अपनी आँखों पर विश्वास न आया. बुत-सी बनी आँखें फैलाए दरवाजे पर खड़े व्यक्ति को देख रही थी, जो कह रहा था—"मालकिन, जल्दी चलो ! बड़ी माँ तुम्हें बुला रही हैं." आवाज़ ने उसे चौंका दिया. यह उनका नौकर सिंदो था. फटे कपड़े, नंगे पाँव, बारिश से भीगा बदन, सर्दी से ठिठुर रहा था ! मगर इतनी रात गये, ऐसी भयानक वर्षा में ! सिंदो ने घुटे स्वर में कहा, "मालकिन, तुम्हारी···हाँ मालकिन···दुनिया लुट गई···." अभी बात पूरी भी न हुई थी कि उपासना बिलखपड़ी—"क्या हुआ ?" —"मालकिन, बाबू जी को किसी ने गोली मार दी". यह शब्द ज्यों ही उसके मुँह से निकले उपासना

को लगा जैसे वह आसमानी वज्र उसी पर गिरा हो. उसके मुंह से दूसरा शब्द न निकला, और फटी आँखों से रात के गहरे अन्धकार को देखती रही.

बिजली की एक तेज चमक उस पर गिरी जो उसकी जिन्दगी का सब-कुछ लूट कर ले गई. फिर बादल जोर से गर्जा. उसकी भयानक आवाज़ आज उसकी बर्बादी का पैग़ाम लेकर आई थी. "मालकिन," घरघराती आवाज़ में सिंदो ने कहा, "आपको और मुन्ने को याद कर रहे हैं—कह रहे थे, आखिरी साँस अपने बच्चे को देखने की इच्छा है···हूँ···हूँ···हूँ !" हिचकी ले-लेकर सिंदो रो रहा था. उसकी आँखों से जलधारा ऐसे टपक रही थी जैसे आसमान से वर्षा की बूंदें. उसने लपक कर बिस्तर पर लेटे मुन्ने को उठाया और उपासना को झिंझोड़ते हुए कहा, "मालकिन, देर न करो !" उस पर मानो इसका कोई असर न हुआ. वह अपना सन्तुलन खो चुकी थी. जब मुन्ने की चीख सुनी तो एक बार होश में आकर चलने को तैयार हुई.

इस भयंकर तूफान को चीर कर न-जाने कब वह अपने ससुराल की पुरानी हवेली में पहुँच गयी. उसने बैठक में प्रवेश किया. सन्नाटा छाया था. सारा परिवार मौन और रुआँसा था. उपासना का पति गम्भीर सिंह लहू से लथपथ बिस्तर पर लेटा शायद जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, अपनी पत्नी और बच्चे को देखने की इन्तज़ार कर रहा था ! लहू इतना बह चुका था कि दो शब्द कहने की शक्ति भी उसमें न थी. चेहरे का रंग पीला, आँखें स्याह और होंठ मुरझाए हुए ! बड़ी कोशिश के बाद उसके होंठ हिले, "मेरे बच्चे का ख्याल रखना." उसका हाथ उपासना के सिर की तरफ बढ़ा और होंठ फिर कुछ कहने को हिले पर आवाज़ बाहर न निकल सकी. फिर एक ही झटके में प्राण-पखेरु उड़ गये ! आँखें पथरा गईं. धमनियों का बचा रक्त जाम हो गया. कमरा रोने की आवाज़ों से गूंज उठा. आवाज़ें टकरा कर उपासना के कानों के पर्दे चीर रही थीं. पर वह मूर्ति बनी एकटक अपने पति की ओर देख रही थी. न आँखों में आँसू, न मुँह में ज़बान. सांस चल रहा था पर ज़िन्दगी नहीं. पल में क्या हो गया ! उसका जीवन तिनके-तिनके बिखर गया. बिजली फिर एक बार ज़ोर से

चमकी. बादल गर्जा, वर्षा और हवा के तेज झोंके आये और उसके बाद धीरे-धीरे सब शान्त होता गया. पर उस बेचारी के मन में अब शान्ति कहाँ ! वह उसी तरह मुर्दा-सी बैठी रही. मुन्ना जोर-जोर से चिल्ला रहा था. पर उसे होश कहाँ ! उसका सर्वस्व लुट चुका था. टिमटिमाते दिये को तूफान के झोंकों ने बुझा कर अन्धकार में डबो दिया था ! फूल-से हृदय पर वज्रपात हो गया था. अब क्या रहा, क्या बचा, कुछ नहीं ! चारों तरफ अंधकार ही अंधकार ! उजाले का तो लेश भी नहीं ! जीवन शून्य, साँसें सूनी, बदन एक बोझ ! उफ ! क्या सोचता है मनुष्य और भाग्य का क्या चक्र चलता है ! दिन बीतते गये. उसकी न आँखों में आँसू, न मुँह में ज़बान ! घरवालो की नज़रो में दो ही दिन में खोट आ गया था. उसके बारे में चर्चा चलने लगी. देखो तो ऐसी बेशर्म, पति मर गया, आँखों में आँसू की बूंद नहीं !

उपासना के दुखी मन ने भी घरवालों की इस क्रूरता का आभास पा लिया था. उसे खाना-पीना भी हराम हो गया था. तब सिदो ने सोचा, इस नन्हें का क्या होगा ? उसका शरीर काँप उठता ! एक शाम वह मालकिन के पास एक गिलास दूध लेकर गया और घुटे हुए स्वर में बोला, "मालिकन, जाने वाला जा चुका है, आपके इस हाल से उनकी आत्मा को भी दुःख मिलेगा. थोड़ा दूध लाया हूँ, पीलो !" और कन्धे पर रखे तौलिये से उसने अपनी आँखों के आँसू पोंछ लिए. उपासना ने कोई उत्तर न दिया. उस पर इन सब बातों का असर न हुआ. जैसे उसके कानों में यह आवाज़ गई ही न हो. सिदो हार कर वापिस लौट पड़ा.

रात का सन्नाटा फिर दिन के उजाले पर छा गया. सब अपने कमरों में सो गये थे, पर नौकर के दिल में चैन कहाँ ? उसके दिमाग में रह-रह कर ख्याल आ रहा था कि मालकिन भी चन्द दिनों की मेहमान है. इन विचारों में ही वह डूबा था कि मुन्ने के चिल्लाने की आवाज़ ने उसका ध्यान तोड़ दिया. उसे एकदम कुछ सूझा. वह मुन्ने को उठाकर मालकिन के पास ले गया और उसकी गोद में रख दिया. मुन्ना रो रहा था. सिदो ने कहा—"मालकिन, याद है न बाबू जी के आखिरी शब्द—मेरे बच्चे का ध्यान रखना." यह शब्द उसके दिमाग में भूकम्प की तरह टकराये और

बिजली की तरह उसके हाथ नन्हें के कपोलों पर उठे. उसने चीख कर कहा—"नहीं, मैं जिऊँगी. मेरे लाल, तुम्हारी खातिर !" और उसकी आँखों से छम-छम, बरसात के रुके बादलों की तरह, आँसू गिर पड़े. जैसे बरसात से धरती का आँचल हल्का पड जाता है उसी प्रकार आँसू गिरने से उसके दुख की मनोदशा कुछ हल्की पड़ गयी.

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, लोगों की नजरें बदलती गयीं. अभी तक उपासना अपने ससुराल की पुरानी हवेली में ही रह रही थी. छोटे से लेकर बड़े तक घर का हरएक सदस्य उसे ताने सुनाता. उस बेसहारा का जीना मुश्किल कर दिया गया. उफ़ ! कितना दर्द, बेचैनी, दुःख, पर फिर भी नन्हे के लिए तो उसे जीना ही था. बात ही बात में एक दिन तो उसकी सौतेली सास ने उसे सबके सामने झंझोड़ दिया और कहा—"डायन आ गयी है हमारे घर. एक तो अपने पति को खा बैठी, दूसरी मनहूस छाया. अब इस घर के पीछे लगी है." उसने निश्चय कर लिया कि वह अपने घर वापस जाएगी. उसने अपने ससुर से अपने भाव प्रकट किये—"मैं वापस अपने घर जाना चाहती हूँ, पिताजी !" पास में खड़ी सास ने कहा—"वाह ! कौन-सा अपना घर ! हमारे बेटे के खून-पसीने की कमाई को अपना घर बना बैठी !"

एक दिन गम्भीर सिंह का बड़ा भाई साजन आया, उसके हाथ में कागज का दस्ता था. आदर से कहने लगा—"बहू रानी, दस्तखत कर दो, जायदाद के काग़ज़ात हैं." उसके मुँह में जुबान तो मीठी थी पर हृदय के भाव जहरीले साँप की तरह विष से भरे थे. काग़ज़ उसके सामने रख दिये गये. उपासना ने पढ़ और दृष्टि ऊपर करते हुए बोली—"ऐसा अन्याय ! मुझे दौलत की चाहना नहीं, पर मुझे इस नन्हे का जीवन तो संवारना है !" साजन ने भोली सूरत बनाते हुए बड़े रसीले स्वर में कहा—"देखो बहू, इसीलिए तो है, जब १८ वर्ष का हो जायेगा तो हकदार है. रही परवरिश की बात सो यह घर है ही." उपासना ने तीखी निगाह से देखते हुए कहा, "समझी ! आपका कसूर नहीं, दुनिया हर गिरे को ठोकर लगाती है. जब वो नहीं तो धन-दौलत क्या है !...अगर मुझमें साहस होगा, बिन सहारे ही खड़ी हो जाऊँगी—ये लो."—उसने दस्तखत करते

हुए काग़ज़ उसके हवाले कर दिये.

काग़ज़ात उठाते ही वह ऐसे वहाँ से भागा कि जैसे भूखा कुत्ता माँस का लोथड़ा मिलते ही एकान्त में दौड़ता है. उपासना का जो एक-मात्र सहारा था, वह भी बेदर्द जमाने ने उससे छीन लिया. जब वह अपने बच्चे के भविष्य के बारे में सोचती तो अंधकार नज़र आता. वह अबला अपने पति को दिये वचन को कैसे निभा सकेगी. बेबल स्नेह का सहारा देकर लाल को दुनिया में सबसे बेहतरीन कतार में कैसे पहुँचायेगी ! उसकी पढ़ाई-लिखाई का खर्चा, दुनियादारी चलाने के लिए, दो समय खाना खाने को, इन सब बातों के लिए पैसे की आवश्यकता होगी. पैसा ! पैसा ! दुनिया में चारों तरफ निगाह फेर कर देखो तो इस झूठी नगरी मे यही छनकते सिक्के भगवान का रूप धारण किये बैठे हैं. इसके बल पर कोई भी सांसारिक काम बुरे-से-बुरा और अच्छे-से-अच्छा हो सकता है. इन्सान के जज़बात, औक़ात, विचारधारा सबकुछ यही तो है ! कहाँ से लायेगी वह दौलत, जो इस बेरहम जमाने में खड़ी होकर भरी भीड़ में अपने बच्चे को आगे से आगे बढ़ाती जाये. उफ ! कैसा अन्याय ! सब-कुछ होते हुए भी कुछ नहीं !

इतना ही नहीं, जब गम के बादल मँडराते हैं तो सिर्फ किसी आँचल पर इस कदर बरसते हैं कि वह छलनी-छलनी हो जाता है. कुछ महीने बाद उपासना पर ज़माने ने चरित्रहीन होने की तोहमत लगायी. उसके सम्बन्ध घर के पुराने नौकर सिन्दो से हैं—यह कीचड़ उछाला गया. उसकी पवित्र आत्मा को ऐसा धक्का लगा जैसे किसी ने पंछी को पिंजरे मे बन्द कर दिया हो ! उपासना की सास ने उसे एक बेसहारा जानवर की तरह मारा. शरीर पर डण्डों की लाल सलाखें अलग-सी नज़र आती थी. वह बेसहारा सब जुल्म सहे जा रही थी. क्यूँ ! ऐसा क्यूँ ? सिर्फ अपने लाल के लिए. उस रात सास-ससुर ने उसे धक्के मार कर निकाल दिया. जाते-जाते उन्होंने उसकी गोद से नन्हे-मुन्ने को भी छीन लिया. एक कड़ा आवाज़ निकली—"इस बेहया औरत का साया भी मेरे खून पर न पड़े." यह आवाज़ उसके ससुर की थी. "चली जाओ, नजरों से दूर हो जाओ." वह अभागन कहाँ किसकी कचहरी में अपनी फरियाद लेकर जाये !

भगवान भी तो उसे न-जाने किन कर्मों का फल दे रहे थे ! अब उसके पास क्या बचा था ! कुछ नहीं. आखिर बेसहारा औरत का निश्चय आत्महत्या ही तो हो सकता है !

एक रात वह अपनी जिन्दा लाश को पानी की पवित्र धारा में झोंकने का निश्चय कर बढ़ी जा रही थी, कि उनका नौकर सिन्दो मालकिन के पीछे-पीछे भागा आया.

"मालकिन, रुक जाओ"—उसने चीख कर कहा. "मालकिन, आपके घर का नमक खाया है. आप मेरी माँ समान हैं. भगवान के लिए इस नन्हे का जीवन तबाह न करो. जरा सोचो मालकिन, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ."

उपासना के मुँह से केवल इतना निकला, "भैया, मैं जी भी नहीं सकती."

"नहीं···नहीं, मालकिन, पलभर की आँधी है, खत्म हो जायेगी. माँ से बच्चे को कोई अलग नहीं कर सकता." उसने गिड़गिड़ाते हुए स्वर में कहा. और फिर सोच-विचार कर वह नौकर के साथ अपनी माँ के घर चली गयी. सिन्दो ने वचन दिया कि वह नन्हे को उसके पास कुछ ही दिनों तक, जैसे भी हो सके, अवश्य पहुँचायेगा.

एक माह गुजर गया पर मुन्ने की कोई खबर नहीं. उपासना का जीवन पल-पल ऐसे कट रहा था, जैसे किसी मछली को शान्त जल से निकालकर रेत के गर्म ढेर पर रख दिया गया हो. परन्तु भयानक इन्सानी भेड़िये शिकार जानकर उसे तड़पता देखकर खुश हो रहे थे. उपासना ने बिस्तर पकड़ लिया था. उसकी ऐसी दशा देखकर उसकी बूढ़ी माँ का कलेजा फटा जाता था. दिल दर्द से कराह उठता, पर लाचार कुछ न कर सकती थी. आज फिर आसमान पर बादल थे, थोड़ी-थोड़ी बूंदा-बांदी हो रही थी. कभी-कभी बादल गरजते, बिजली चमकती. उपासना का मन ऐसे दृश्य को देख अब व्याकुल हो उठता. उसके जख्मों पर नया घाव पैदा कर देता. इसी दशा मे बिस्तर पर पड़ी वह छटपटा रही थी कि दरवाजे पर आवाज आयी. उपासना की बूढ़ी माँ ने दरवाजा खोला. देखा, तो सिन्दो बच्चे को गोद में लिये खड़ा है. यह देखकर उसका हृदय गद्-गद् हो गया. वह प्रसन्नता से झूम उठी ! पलभर के लिए चेहरे पर रौनक छा

गयी. उसने इस हालत पर काबू न पाते हुए, अपनी बेटी को आवाज़ दे डाली, "उपासना, देखो बाहर मुन्ने को लेकर सिन्दो आया है." यह शब्द उसके लिए एक ऐसी आकाशवाणी लगी, जैसे स्वर्ग लोक से एक साथ ही सैकड़ों नगाड़े बज उठे हों. वह एकदम लड़खड़ाती हुई वहाँ पहुँची और मुन्ने को एक अरसे के बाद इन तरसते नयनों से देखा. उसकी आँखों से छम-छम आँसू बरसने लगे. कराहती आवाज़ में वह कह रही थी—'मेरे बच्चे, तुम आ गये···नही तो शायद यह जीवन-नैय्या ही टूट जाती." दृश्य इतना गंभीर और दर्दनाक था कि सिंदो की आँखों से भी आँसू बहने लगे. माँ का कितना स्नेह होता है बच्चे के प्रति ! 'माँ' शब्द की महानता शायद ईश्वर के दर्जे के समान है. एक माँ के हृदय का दर्द कौन जान पाया है ?

फिर तो उपासना दिन-प्रतिदिन भली होती गयी. उसके होंठों से लुटी मुस्कराहट, नयनों की चमक फिर वापस आने लगी. परन्तु विधाता के खेल अनोखे हैं. इन्हें समझना बुद्धि से बाहर है, न-जाने अगले पल में क्या हो जाए ! फिर वही अन्धेरा छा गया. उसकी सांसारिक दुनिया में जो माँ का सहारा था, वह भी छूट गया. इतनी बड़ी दुनिया मे अब वह अकेली और उसका बच्चा था. उसके इर्द-गिर्द इन्सान गिद्धों की तरह घेरा डाले उसके खून के प्यासे ! बुढ़िया की आँखें बन्द होते ही रिश्ते-नातों ने नाना प्रकार के यत्न किये—जमीन-जायदाद हड़प करने के लिए. और काफी सफल भी हो गये. उस बेचारी के पास एक छोटा-सा मकान और दो टुकड़े जमीन ही रह गयी. कितने जुल्म, कितने सितम, कितना दुःख-दर्द सहा !

चारपाई पर बैठी अतीत की यादों में इतनी डूबी थी कि उसके पास खड़ी पड़ोस की महिला तीन-चार बार उसे पुकार चुकी थी, पर उसे कुछ सुनायी नही दिया. जब उस महिला ने उपासना का कन्धा पकड़ कर झंझोड़ा तब उसने सिर ऊपर उठाया. जैसे कोई पहाड़ से नीचे गिर गया हो !

"किशन की माँ, किस गहरे विचार में हो, मैं कब से खड़ी पुकार रही हूँ—थोड़ा सा दूध चाहिये गाय का !"

वह पुनः अपने विचारों की माला भंग करके होश में आयी और उठ-

कर कमरे से दूध लाने चली गयी.

० ०

सड़क पर दूर धूल उड़ रही थी, शायद बस आज भी निकल चुकी थी. किशन को आज फिर कॉलेज तक पैदल ही चलना होगा. उसका कॉलेज घर से चार कोस की दूरी पर था. सड़क पर कभी कुछ देर के बाद युवतियों का झुण्ड निकल जाता था. जब यह झुण्ड उसके नजदीक से गुजरता तो किशन पसीने से तर, रंग गुलाबी, ओंठ एकदम सुरख, दिल की धड़कन जोर-जोर से साफ सुनाई पड़ती थी. उसे यह भी भय रहता था, न-जाने कौन-सी युवती क्या व्यंग कस दे. इसलिए उसने विचार किया कि इन सबके निकल जाने के बाद ही वह चलना शुरू करेगा. वह पास के एक चाय स्टाल में बैठ गया. जब उन स्कूल जाने वाली लड़कियों की भीड़ समाप्त हो चुकी तो उसने कालिज की ओर अपने कदम बढ़ाना शुरू किये. हाथ में पुस्तकें लिए, सिर किसी सोच में नीचा किए, दुनिया से बेखबर अपने विचारों में डूबा कदम बढ़ाता जा रहा था. उसे रह-रहकर यही विचार आ रहा था कि जनवरी का मास भी गुजर गया, फरवरी के प्रथम सप्ताह के अन्दर बी० ए० के इम्तहान की फीस चुकानी है. इतनी बड़ी रकम—७० रुपये कहाँ से लायेगा वह—क्या करे—अपनी माँ को कहकर उसे ज्यादा दुःख नहीं पहुँचाना चाहता था. क्योंकि वह जानता था कि अगर माँ के पास एक रुपया भी हो तो उसका खजांची वही होता है. वह उसकी मजबूरी को दर्द में परिवर्तित नहीं करना चाहता था. एक साथी से सहायता की प्रार्थना की थी, पर उसे भी आज-कल करते महीना हो गया था. प्रतीत होता था कि वह भी उसकी मदद न कर पायेगा. अगर पैसों का प्रबन्ध न हुआ तो परीक्षा मे नहीं बैठ सकेगा. यह सोचकर उसकी आँखों के आगे अंधेरा-सा छा जाता, नसों का रक्त जम जाता, होंठ स्याह पड़ जाते. हाय ! कैसे दिन हैं. क्या मानव-जीवन है, पग-पग पर दुःख, दर्द ! इन्ही विचारों के तर्क में डूबा सड़क के मध्य आगे पग बढ़ाता जा रहा था कि अकस्मात कार का हार्न उसके कानों में गर्जना की भाँति टकराया. कार उसके दो कदम पीछे ही होगी कि उसने मुड़कर देखा. घबरा कर किताबें हाथ से छूट गयीं और छलाँग मारकर सड़क के

किनारे लपक गया. कार की ब्रेक लगी, वह वहीं जाम हो गयी. सफेद रंग की आकर्षक फियट कार से एक छाया-सी उतरती प्रतीत हुई. कार का दरवाजा खुला, उसमें से एक युवती निकली और चिल्लाकर कहने लगी —"ए मिस्टर, अपनी जान प्यारी नहीं, तो सड़क पर मरने की क्या जरूरत—कहीं दूसरी जगह नहीं ?"—और वह युवती नवयुवक के करीब आ पहुँची. युवती जो अँग्रेजी ढंग के कपड़े पहने थी, काली बैल बौटम और सफेद खुला-सा कुर्ता, उसके ऊपर बेहतरीन फैशन की कमरी थी. पाँव में कीमती चप्पल, बाल अँग्रेजी ढंग के कटे हुए पर काले और घने, आँखों पर गोल भूरे रंग का चश्मा. उसने चश्मा उतारते हुए कहा—"मर जाते तो कौन जिम्मेदार था ?" इसे सुनकर किशन का रंग क्रोध से लाल हो गया, नसें खून से उभर आयीं, पर न-जाने उसके होंठ क्यों नहीं खुल रहे थे. वह खामोश बुत बना उस युवती को निहार रहा था, जो बिजली की तरह उस पर चमक रही थी. उसका रंग सफेद, आँखें काली, होंठ गुलाब की पँखुड़ियाँ, पर क्रोध में वह ज्वाला प्रतीत हो रही थी. वह कहती ही जा रही थी. जब उसने युवक को यूँ चुप बुत बने देखा तो अन्तिम वाक्य कहते हुए—"बेशर्म—एक तो गलती करते हो, दूसरा मुँह लटकाये खड़े हो"—कार में जा बैठी. कार स्टार्ट करके एक ही पल मे नजरों से ओझल हो गयी.

किशन अब सड़क के किनारे चल रहा था. उसे अपनी गलती का अहसास हो गया था, पर फिर कुछ देर बाद विचारधारा मे डूब गया. कैसी थी वह लड़की ! इसी बात पर गहरा विचार करने लगा. इतनी अमीर ! बँगला, नौकर, धन-मान—इन लोगों का जीवन ही जीवन है. कोई चिन्ता नहीं, आराम ही आराम ! हर मनुष्य ऐसा ही क्यों नहीं हो सकता है ! पर वह जीवन के रहस्य को क्या समझे कि पैसा, धन-दौलत यह सब कहाँ से आती है. अभी तो वह केवल विद्यार्थी ही था. जीवन का तथ्य सिर्फ पुस्तकों तक ही सीमित था.

जब किशन कालेज के गेट के पास पहुँचा, उसके सहपाठी काजल सिंह ने उसे दूर से ही जोर से आवाज़ लगायी. उसकी ओर बढ़ा. पास पहुँचते ही काजल ने कहा—"यार, आज भी तुम क्लास में नहीं आये, प्रोफेसर

तुम्हें याद कर रहे थे." किशन ने धीमे स्वर में पूछा, "कहाँ होंगे इस समय ?" प्रश्न का उत्तर मिला—"अपने दफ्तर में हैं अभी तो." किशन दफ्तर की ओर बढ़ा.

कालेज का जीवन भी कितना सुहावना जीवन है—चिन्तारहित. चारों तरफ लडके-लड़कियों की टोलियाँ आपस में अठखेलियाँ कर रही थीं. कालेज की चारदीवारी ऐसे प्रतीत हो रही थी, जैसे मानों इन्द्र महाराज की ड्योढ़ी हो ! एक तरफ घास का हरा मैदान और उसमें लगे चारों ओर सुन्दर फूल, दूसरी ओर घने चील के वृक्षों का झुण्ड. शीतल पुरवाई एक मीठी-सी धुन पैदा कर रही थी. चारों ओर नौजवान दिलों की धडकनें ! प्रेम-भरी बातें ! कालेज का खूबसूरत भवन, सब मिलकर वातावरण को और भी सुहावना बना रहे थे. पर किशन का हृदय अशान्त था. यह तो भाग्य का खेल है, कई मनुष्य नदी के तट पर भी प्यासे-के-प्यासे रह जाते है. किशन जब दफ्तर के समीप पहुँचा तो अन्दर जाने की अनुमति लेते हुए उसने कमरे में प्रवेश किया. प्रोफेसर ने नजर उठाकर प्रश्न किया—'तुमने किशन, अभी तक दाखला नही दिया, इस सप्ताह तक पहुँच जाना चाहिए." यह सुनते ही उसे ऐसा लगा जैसे किसी ने उसके जिस्म पर जलता अँगारा फेंक दिया हो और वह दर्द मे बेचैन हो उठा. उसने सिर नीचा किया था और अपनी इस हालत पर स्वयं सहानुभूति खा रहा था. कोई जवाब न बन पाया कि वह उत्तर में क्या कहे, उसके दर्दभरे होठ हिले—"सर, बात यह है···" और फिर वह खामोश हो गया. प्रोफेसर ने कहा—"किशन, शनिवार की डाक मे सब फार्म हर हालत में भेजने है." किशन ने उत्साह बटोरकर फिर कहना शुरू किया—"जी मेरी माँ बाहर गयी है—कल आ जायेगी तो परसों फीस दे दूँगा." "ठीक है तुम जा सकते हो पर परसों तक पैसे जमा होने चाहिएँ." "जी सर.···" यह कहकर वह बाहर निकल गया. उसके मन मे यही विचार उठ रहा था कि अपना हाल छुपाने के लिये झूठ तो बोल दिया, पर अगर पैसों का प्रबन्ध न हुआ तो···शायद परीक्षा न दे सकेगा. उसकी मेहनत व्यर्थ जायेगी.

दूसरा दिन भी निकल गया, पैसों का प्रबन्ध न हो सका. वह एक ऊँचे

पत्थर पर बैठा दूर सफेद रंग की बर्फ से ढकी सुन्दर पहाड़ियों को, उसकी ढलान में गहरे हरे जंगल, और निकलती हुई नदी के प्राकृतिक दृश्य को देख रहा था. कितना शान्त वातावरण है ! धीमी-धीमी दूर बहते हुए दरिया की आवाज़ उसके कानों मे मानों कोई जीवन का सबसे सुन्दर राग सुना रही थी. मन की उदासी आँखों से आँसू बन टपक पड़ी. कहाँ जाए, कौन है उसका इस वक़्त जो मदद करे ! "नहीं···नहीं मैं माँ से नहीं कह सकता." उसके मुँह से उलझन में शब्द निकले. फिर एकदम डूबते को तिनके का सहारा की तरह एक ख्याल आया. क्यूँ न वह अपनी चित्रकारी के तीन सुन्दर चित्र बेचकर काम चलाये ! ये चित्र उसने साल-भर की मेहनत से बनाये थे. इसी विचार से वह उठा और घर की तरफ चला.

घर पहुँचा तो माँ वहाँ नहीं थी. शायद पड़ोस में होगी. यह जानकर उसे कुछ और साहस हुआ कि चलो चुपके-से वह चित्रों को उठा ले जाएगा. माँ के प्रश्नों की बौछार से तो बच जाएगा, बाद में पता चलने पर देखा जायेगा. ज्यूँ ही वह कमरे में पहुँचा, उसकी नजर अपने चित्रों पर पड़ी, उसे अनुभव हुआ कि उसकी कला भी उसके हाल पर आँसू बहा रही है ! जब चित्र उठाने के लिए हाथ बढ़े, उसके बदन मे बिजली-सी कौंध गयी. वह पलभर के लिए सुन्न हो गया. उसने अपनी कला का एक मन्दिर बनाने की ठानी थी, पर आज वह अपने भाव-मन्दिर को ही तजबूरी के बाजार मे बेचने जा रहा था ! वक्त भी क्या बलवान है, न-जाने कब, किसको, किस काम के लिए विवश कर दे ! उसकी आँखों से दो शबनम की बूंदें फर्श पर गिर गयीं. उसने फिर अपनी आँखों के आँसू पोंछकर एकदम तस्वीरें उठा ली और शहर की ओर बढ़ने लगा.

वह एक बड़ी दूकान पर पहुँचा, जहाँ पहले ही कई चित्रकारी-भरी तस्वीरें थीं. उसे देखते ही दुकानदार ने कहा—"आइये किशन बाबू, कैसे आना हुआ ?" दुकानदार की नजर उसके हाथ में लपेटे लम्बे-चौड़े दस्ते पर थी. "भाई साहब, मैं ये···"—अभी बात पूरी भी न हुई थी कि उसने उन चित्रों को अपने हाथ में लेते हुए खोला, और ऐसे निहारने लगा जैसे कोई निर्वसना औरत के गदराये हुए बदन पर वासना-भरी नजर डालता है. "खूब ! बहुत खूब ! कहो क्या लेना है इनका !" किशन ने हारे हुए

जुआरी की तरह टूटे हुए स्वर में कहा—"दो सौ रुपये." "अरे भाई, यह लो." दुकानदार ने नोट थमाते हुए कहा. जब किशन ने नोट पकड़े तो उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे उसका सबकुछ लुट गया हो ! फिर एकदम मुड़ा. सिर नीचा किए जा रहा था कि सीढ़ियाँ उतरते ही एक युवती से जा टकराया. युवती का मुँह गुस्से से लाल-पीला हो गया. ज़ोर से कहा—"यू इडियट—अन्धे हो क्या ?" जब किशन ने गर्दन उठाई तो देखता क्या है कि वही कार वाली युवती थी. वह बहुत शर्मिन्दा हुआ. आज दूसरी बार. न-जाने क्यों बार-बार उससे अनजाने ही टकराव हो गया ! "जी, माफ करना, दूसरी बार गलती हो गई." और जल्दी से सड़क की ओर बढ़ गया. लड़की वहीं खड़ी उसे क्रोध से देख रही थी और बुड़बुड़ा रही थी, "क्लॉऊन आफ द हाइयेस्ट ऑर्डर", और फिर सीढ़ियाँ चढ़कर दुकान पर पहुँची. जैसे ही काउण्टर पर पहुँची दुकानदार ने मुस्कराते हुए कहा—"मेम साहब, आज तो मैं आपको बेहतरीन पेन्टींगज् दिखाऊंगा. आप ज़रूर पसन्द करेंगी. ये देखिए !"—उसने चित्र निकाल कर सामने रख दिये. उन्हें देखते ही उसके मुँह से निकला—"ओ एक्सीलेंट, मारवलैस आर्ट··· यस—ये हैं मेरी पसन्द की पेन्टींगज्—पैक कर दो तीनों को."

'कितने हैं तीनों के ?"

"जी, आप हमारे अपने ग्राहक हैं इसलिए कम ही लूँगा. केवल दो हजार." "ठीक है, कल चैक भिजवा दूंगी." चित्र लेकर दो कदम ही आगे बढ़ी थी कि सहसा रुक गई, मुड़ कर पूछा, "एक बात भूल गई. क्या मैं जान सकती हूँ किस आर्टिस्ट की हैं ?" दुकानदार ने अनोखे स्वर में कहा—बस पूछिये मत—कला क्या, जादू है उसके हाथ में ! बेचना तो उसने सीखा ही नहीं ! न-जाने कौन-सी मजबूरी खींच लाई उसे. पूरी यूनिवर्सिटी में चर्चे हैं उसकी कला के. अभी जो आपके सामने से गुज़रा है, उसी लड़के की हैं." यह सुनकर युवती जैसे वहीं-की-वहीं जाम हो गयी. मौन भंग करते हुए दूकानदार बोला, "आपको हैरानी होगी कि कल का छोकरा—पर यकीन मानो मेम साहब, आर्ट तो कुदरत की देन है, उम्र से कला का कोई मेल नहीं." युवती सुनती जा रही थी. उसकी ज़बान से कोई शब्द नहीं निकला और वह दुकान से बाहर निकल गई. कार स्टार्ट

करके सड़क की भीड़ को चीरती हुई अब खुले चौड़े एकान्त रास्ते पर उसकी कार दौड़ रही थी. उसके दिमाग में रह-रह कर उस युवक के विचार आ रहे थे. क्या वह इतना बड़ा कलाकार हो सकता है ! चाल-ढाल से तो गंवार लगता है. फिर दुकानदार के कहे शब्द उसके कानों में टकरा रहे थे.

रात को बिस्तर पर लेटे-लेटे कई बार उस अजनबी की चित्रकारी उसकी आँखों के आगे घूम गई. फिर उसके चेहरे की धुंधली-सी मूर्त, उसको दुकान पर कहे गये शब्द, रह-रह कर याद आ रहे थे. आज करीब एक सप्ताह बीत गया. लाख प्रयत्न करने पर भी वह न मिला, जिसको मिलने के लिए वह बेचैन हो उठी थी. कभी-कभी उसी समय उसी रास्ते पर कार खडी करके इन्तजार करती जहाँ प्रथम टकराव हुआ था. कभी बाजार की भीड में हर शक्ल को पहचानती चलती. उसका मन मिलन की घड़ी के लिए व्याकुल था परन्तु अब तो निराशा ही सामने थी. कई प्रयत्न असफल हो गये थे और कभी-कभी वह घर में लगी तस्वीरों से बातें करती. एक शाम को जब वह घर वापस आ रही थी तो कार की रोशनी में एक चेहरा नजर आया, जो बाजार से बाहर निकलते रास्ते पर आगे बढ़ रहा था. उसके हाथ में तीन-चार पुस्तकें, काली पेंट और सफेद कमीज के ऊपर काली ही जरसी थी. उस ने ब्रेक लगाई और उतर कर अजनबी से कुछ कहने को तैयार हुई. उसका दिल जोर-जोर से धड़क रहा था, पर अपनी इस मिलन की सफलता पर उसे इतनी खुशी हो रही थी कि बस अपने आप में न थी. जब नौजवान करीब से गुज़रा तो उसने पीछे से आवाज लगाई.

—जी सुनिये.

—आपने मुझसे कुछ कहा ?

लड़की ने लजीले स्वर मे कहा—जी आपने मुझे पहचाना नहीं ?

उसने गौर से नज़र डालते हुए देखा और कहा—ओह ! आप ! मगर आज तो मैं ठीक चल रहा हूँ, सड़क के बाईं ओर. फिर यह कष्ट कैसे ?"

अभी बात पूरी भी न हुई थी कि युवती ने कहा—मैं उस दिन क्रोध

में जो अपशब्द कह गई थी, उनके लिए क्षमा माँगना चाहती हूँ.

—देवी जी, क्षमा कैसी ! आपने तो मुझे शिक्षा दी है—सड़क पर चलते हुए अपनी जीवन-रक्षा की. इतना कहते ही उसने अभी आगे चलने को कदम बढ़ाया ही था कि युवती के शब्दों ने उसे रोक लिया—लगता है आप घर जा रहे हैं ? रात गए बस मिलना कठिन है. अगर मैं अपने साथ ले चलूँ तो एतराज न होगा ?

उसने धीरे से कहा—जी एतराज क्या हो सकता है ? आपकी बहुत मेहरबानी होगी. दोनों कार की ओर बढ़े. किशन ने पीछे का दरवाजा खोलना चाहा पर युवती बोली—आगे आ जाएँ. कुछ बातचीत में रास्ता कट जाएगा. नौजवान चुप रहा और अगली सीट पर बैठ गया. अब गाड़ी भीड़ छोड़कर शांत रास्ते पर आ चुकी थी. युवती जान-बूझकर कार धीरे चला रही थी. खामोशी को तोड़ते लड़की ने पूछा—कहाँ रहते हैं आप ?

—यहाँ से करीब पाँच मील सड़क के बायें हाथ नीचे गाँव है, वहीं.

—क्या मैं आपका नाम···

—जी मुझे किशन कहते हैं और आप ?—मेरा नाम सुभाषनी है.

—जी सुभाषनी ! किशन कुछ अचम्भे में कह गया ! —क्यूँ अच्छा नहीं लगा ?

—जी नाम तो सुन्दर है पर···

—पर···मैं समझ गई !

दोनों ने एक साथ हँस दिया. पल-भर की पहचान में दोनों आपस में काफी घुलमिल गये थे. कार धीरे-धीरे आगे बढ़ती जा रही थी.—किशन, क्या काम करते हो ?

—बी० ए० फाइनल में हूँ, गवर्नमेंट कालेज में. और आप ?

—मैं महिला कालेज में हूँ. अब तो परीक्षा नजदीक आ गई है, काफी पढ़ते होंगे आप ?

—मजबूरन पढ़ना ही पड़ता है. सोचता हूँ, जल्दी बी० ए० करके कोई नौकरी तलाश करूँ. कम-से-कम बुढ़ापे में अपनी माँ को थोड़ा आराम दे सकूँ. आपको तो शायद जिन्दगी की चिन्ता न होगी ? कितना अधूरा तथ्य है गरीबों का जीवन ! भूखे पैदा होते हैं और रोटी की

तलाश में दम तोड़ते मर जाते हैं. किशन एकदम गम्भीर हो गया था. सुभाषनी सुन रही थी. रुँधे स्वर में बोली—आप ठीक कहते हैं शायद.

—शायद ? आज पैसे की ही बड़ाई है. भगवान के बाद दूसरा दर्जा पैसे का ही आता है. अगर इन्सान के पास चाँदी के चन्द सिक्के हों तो उसके मुँह का बोला हुआ शब्द अमृत और इशारा तलवार की तेज धार !

—यह ठीक है पर आश्चर्य तो यह है कि पैसे वाले भी दुखी हैं ! बाहर से तो मैं आपको शायद खुश नजर आती हूँ—पर हृदय में कितने जख्म, कितने ग़म हैं, उनका अनुभव शायद आप नहीं कर सकते. इतना कह कर वह चुप हो गई. किशन ने उसी बात को दोहराते हुए कहा—"भला आपको क्या गम हो सकता है ? अगर हो भी तो मन-बहलाव पैसे के बल पर कर सकती हो. दुनिया के बाजार में बिकने वाली हर चीज पा सकती हो, और आजकल तो ईमान तक बिक जाता है !" गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ती जा रही थी. रात का अन्धेरा जरा गहरा हो गया था. बात बदलते हुए सुभाषनी कहने लगी—कब शुरू हो रही है परीक्षा ? किशन ने उसकी आँखो में शायद पहली बार झाँक कर देखा था. दोनों के नेत्र मिले, हृदय में एक अनजानी मधुर टीस हुई. चन्द लम्हों के लिए साँस रुक गई.

—इसी महीने.

—और खत्म कब होंगे ?

—अगले महीने की पंद्रह तारीख तक.

अब किशन का गाँव भी नज़दीक आ गया था, उसने कहा—अगले मोड़ पर उतरना है मुझे.—ओह ! मालूम न था कि इतनी जल्दी सफर समाप्त हो जाएगा. कहो तो घर तक छोड़ आऊँ. किशन ने बनते हुए कहा—आप इतनी मेहरबान हैं, मालूम न था. पहली बार आज एक अमीर इन्सान को दयालु देख रहा हूँ. बहुत शुक्रिया आपका ! मेरे गाँव तक सड़क ही नहीं जाती, पैदल चलना पड़ता है. गाड़ी को ब्रेक लगी, मोड़ पर रुक गयी. किशन उतरने के लिए दरवाजा खोलने लगा और सुभाषनी का हाथ उसके हाथ से टकरा गया. इस स्पर्श से दोनों को यूँ अनुभव हुआ जैसे कोई अचानक मधुर संगीत की तरंग उठी हो. दोनो के नैन टकराये,

खामोश एक-दूसरे को देखते रहे. वातावरण भी खामोश था और अंधकार में जलती हुई कार की बत्ती ऐसे लग रही थी कि शायद जीवन को उजला कर रही हो. किशन उसके चेहरे को निहारता जा रहा था—उस खूबसूरत बुत को शायद जिसे आकार देने के लिए बनाने वाले को कितनी ही बार मिटाना पड़ा. सलौना बदन, मृगनयनी, हिरण-सी चंचल, जैसे सुन्दरता के बाग की सारी आकर्षक कलियाँ इसी पेड़ पर लगा दी हों ! उसके मन में आज पहली बार एक युवती की तस्वीर मदिरा की भाँति अन्दर प्रवेश कर रही थी. सुभाषनी का मन तो पहले ही और-सा हो रहा था. पूछा—फिर मिलोगे न !

—मिलन तो कुदरत का खेल है, जब मिला दे !

सुभाषनी ने भावपूर्ण आवाज़ में कहा—परीक्षा से पहले तो एक बार मिलोगे न ! बारह तारीख को मैं छः बजे यहीं आपका इन्तजार करूँगी.

इतना कह कर उसने गाड़ी का इंजन चालू किया और स्टेरिंग पर हाथ रखते हुए बोली—"अच्छा इजाजत दो, मैं चलती हूँ." किशन वहीं-का-वहीं खड़ा उसकी तरफ देख रहा था. मुँह से कुछ बोल न पाया. गाड़ी क्षणभर में आँखों से ओझल हो गई. किशन के दिमाग पर सुभाषनी छा गई थी. उसका चेहरा, उससे किया वार्तालाप, उस पर मानों जादू सा चमत्कार कर गया हो. इन्हीं ख्यालों में डूबा, अन्धेरी रात्रि में घर की ओर पग बढ़ाये जा रहा था. अंधेरा था पर उसके साथ एक मधुर मुलाकात की यादों का उजाला था.

आज बारह तारीख है. सुबह से ही सुभाषनी बहुत प्रसन्न है. जिस दिन का इन्तजार था वह भी आ गया. आज रविवार होने की वजह से वह घर पर ही थी. सुबह ही उठकर अपने बँगले से बाहर भ्रमण करने निकल गई. सुबह का वातावरण कितना सुहावना, हर चीज खामोश, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो हर वस्तु किसी तपस्या में लीन है. सुन्दर हरी घास पर ओस के सफेद मोती, ठण्डी-ठण्डी मन्द पवन, दूर सफेद बर्फ से ढकी पर्वत-माला जैसे किसी इन्द्रपुरी के सिर पर हीरों से जड़ा बेहतरीन मुकुट हो. दूर बहते हुए दरिया का पानी और झरनों से गिरते पानी की संगीत-ध्वनि सबकुछ मिल कर उसके हृदय में मिलन-ज्वाला को प्रज्वलित कर रहा

था. फिर दिन-भर वह अपने बंगले के लान में बैठी अध्ययन करती रही. ज्यों-ज्यों मिलन का समय कम होता उसका हृदय इन्तजार में और भी ज्यादा धड़क उठता. कभी खुशी से चेहरे पर लजीली तो कभी आकर्षक रंगत छा जाती···कैसी होती हैं इन्तजार की घड़ियाँ भी !

शाम आ गयी. आज की इस सुहावनी शाम को सुभाषनी ने कितनी ही मधुर स्मृति की लड़ियों में पिरो रखा था. पल-पल इस समय उसे भारी बोझ प्रतीत हो रहा था.

—बैठी बोर हो रही हूँ डैडी, जरा घूम आऊँ ?

—मगर अब तो रात होने वाली है, अन्धेरा हो रहा है. माँ ने कहा.

—तो क्या हुआ दिल में उजाला चाहिए. जा बेटी, घूम आ. मेरी बेटी मामूली नहीं, शेर है···.यह डैडी थे. उसने जाने को कदम उठाया ही था कि माँ ने फिर कहा—अच्छा बेटी, ड्राइवर को साथ ले जाना.

—अच्छा मम्मी—सुभाषनी ने मुड़कर कहा. वह अपने ड्राइंग रूम में गई, बटन दबाया, एकदम वस्त्रों से सुसज्जित अलमारी खुली. आज उसे समझ नहीं आ रही थी कि कौन-सी पोशाक पहने, फिर उसने एक बहुत पुरानी लोंग शर्ट काले रंग की निकाली जो कि किसी सबसे बेहतरीन रेशम की थी, और हल्के गुलाबी रंग का स्लैक्स पहन कर कई बार बड़े आईने के सामने खड़ी अपने आप को निहारने लगी. अपने बैड-रूम में जाकर उसने ज्वेलरी कोरनर से एक खूबसूरत हार निकाला जो कि सफेद मोतियों से जड़ी माला और बीच में एक बहुत ही चमकीला व कीमती हीरा जड़ा हुआ था. आज वह जैसे एक परी बन कर हवा में उड़ जाना चाहती है. उसने सीढ़ियाँ उतरकर ड्राइवर को आवाज लगाई—रामू काका, आज डैडी की कार निकालना. जरा घूमने जाना है. तुम भी तैयार हो जाओ. ड्राइवर ने झट से आसमानी रंग की नई कार गेट के पास लगा दी. वह फुव्वारे के पास गई और कहा, "अच्छा मम्मी, मैं जा रही हूँ—देर हो जाए तो चिन्ता मत करना.— बेटी, जल्दी आना. उसकी माँ ने कहा.

ड्राइवर ने गाड़ी गेट के पास लगा दी और गाड़ी की पिछली सीट पर बैठते हुए उसने चलने का संकेत किया. पल-भर में ही गाड़ी हवा-सी तेज चौड़ी सड़क पर उड़ती चली गई.

आज अवकाश का दिन था इसलिए किशन व उसकी माँ दोनों मिल कर खेत में काम कर रहे थे. किशन हल चला कर जमीन को ठीक कर रहा था और उसकी माँ खेत में खाद बिखेरती जा रही थी. क्या एक कलाकार के हाथ इतने सख्त ! अचम्भे की बात है. पर विवशता मनुष्य को हर काम करना सिखा देती है. मन की उमंग कई भाव लेकर हमारी नजरों के सामने प्रस्तुत होती है, चाहे कविता हो, लेख, कहानी या चित्रकारी, यह सभी मनुष्य के छुपे हुए भावों का प्रतिबिम्ब है. आज वह हर काम बड़ी स्फूर्ति से करता जा रहा था. उसकी हलचल और मनोदशा को उसकी माँ कब से भाँप रही थी.—माँ, एक दोस्त है मेरा, साथ पढ़ता है, जरा इम्तहान के बारे में दो-चार जरूरी चीजें पूछनी-पूछानी हैं, मैं जाऊँ ?

—तो क्या मुझे अकेला छोड़ जायेगा. इसी लिए कहती हूँ, मेरे लिए बहू ला दे. किशन को ऐसे लगा कि माँ ने जैसे अभी उसके मन के विचार पढ़ कर मन की बात कह दी हो. किशन सम्भलता हुआ कुछ गम्भीरता से बोला—माँ, किसी चीज की तमन्ना से पहले उसके काबिल बनना होता है. हमारे कन्धे इतने मजबूत कहाँ, जो आने वाले अर्से तक किसी का बोझ उठा सकें ! एक अबला औरत की औलाद ! कौन मानेगा, कौन समझेगा इस मन का दर्द; माँ···

अभी बात पूरी भी न हुई थी कि उसकी माँ ने जोर से भर्राती आवाज़ में कहा—"बस करो बेटा ! ममता मे पड़कर पलभर के लिए अपनी औकात भूल बैठी थी." उसके नेत्र आँसुओं से सजल थे. किशन हल छोड़ कर माँ के करीब गया और आँचल से आँसू पोंछते हुए भारी स्वर में बोला—"माँ, इस एक-एक आँसू की कीमत, इसी दुनिया से लूँगा. वक्त बदलती धारा है. आज ये है तो कल···वक्त आने पर सब ठीक हो जाएगा. माँ, धीरज, मेहनत और यकीन ही मंजिल पर पहुँचाते हैं."

शाम ढल चुकी थी. दूर शहर में बत्तियाँ जगमगानी शुरू हो गई थीं. किशन जल्दी से तैयार होकर चल पड़ा था. उसने पूरा रास्ता दौड़ते हुए तय किया. बार-बार यही सोच रहा था कि कहीं सुभाषनी इंतजार करते-करते बिना मिले निराश न लौट जाए ! अगर ऐसा हुआ तो वह मुझे मक्कार

ही समझ बैठेगी.

उधर सुभाषनी मोड़ पर एक हरे पेड़ के नीचे पल-पल बड़ी बेचैनी से काट रही थी. इसी विचार में लीन थी कि शायद अब नहीं आयेगा. शायद आने वाला हो···पगडण्डी पर टकटकी बाँधे बैठी थी. एक काला साया भागता हुआ आ रहा था. जब नजदीक पहुँचा तो उसने जोर से हँसते हुए कहा—"ऐ जी,···ऐसी भी क्या बात है जो भागे जा रहे हो, जरा इधर भी नज़रे-इनायत हो जाय." किशन इस आवाज से चौंक-सा गया, वहीं क़दम जाम हो गये. करीब आकर हाँफते हुए बोला, "ओह···आप··· मुआफ करना, देर हो गयी !" पसीने से उसका चेहरा तर था. सुभाषनी ने बैग से रूमाल निकाल कर उसके गालों का पसीना अपने हाथों से पोंछते हुए कहा—"ये प्यार के मोती अपने रूमाल में डालने की इजाज़त चाहती हूँ." किशन ने बड़ी स्नेह-भरी दृष्टि डाल कर कहा—"आप···क्या कहूँ···कोई शब्द ही नहीं···कितनी अच्छी हैं, जहाँ तक कल्पना भी नहीं कर सकता. आपका इतना स्नेह-भरा रूप देखकर, जी चाहता है, आपके कदमों में ही जीवन गुजार दूँ." सुभाषनी बोली—ऊँ···हूँ. प्रीतम का स्थान कदमों में नहीं, पलकों व मन-मन्दिर में होता है." किशन ने बड़े अजीब स्वर में कहा—"जी···प्रीतम···!" और फिर चुप हो गया. "क्यों ? चुप क्यों हो गये ?"

"सोच रहा हूँ, जो शब्द आपने कहे, मैं उस काबिल हूँ क्या ? कहाँ मैं एक रास्ते की धूल और कहाँ आप गुलशन की सुसज्जित कली, पूजनीय कलश; समाज की शोभा···" अभी बात पूरी भी न हुई थी कि सुभाषनी बोल पड़ी—"एक फूल की उत्पत्ति धूल के कणों से होती है. पेड़ की जड़ तो धूल में ही समाती है···आप क्या हैं, क्या नहीं, मैं जानती हूँ." दोनों फिर कुछ देर के लिए मौन हो गये.

आज पूर्णमासी थी. चाँद दूर पर्वत-शिखरों से धीरे-धीरे उदय हो रहा था. चाँदनी की पहली किरण ने अंधकार को अपने उजले कणों से धोकर उजास में बदल दिया था. बेहद खूबसूरत वातावरण. पर्वत-घाटियों पर कहीं-कहीं लौ की मशालें जलती दिखाई दे रही थीं. धीरे-धीरे बहती पवन वृक्षों को छूकर प्यार-भरा मधुर संगीत पैदा कर रही थी. धुँधलेपन

में हर चीज एक-दूसरे के करीब नजर आ रही थी. दूर पर्वतमालाएँ आपस में ऐसी मिली दिखाई पड़ रही थीं कि सारे संसार के लिए मिलन की बेला और हर प्रेमी-प्रेयसी मिलन के पावन बन्धन में बन्धे हों.

वातावरण से प्रभावित हो सुभाषनी बोली, "चाँद कितना खूबसूरत है—कितना शीतल, उफ··! कोई इसका बयान नहीं कर सकता!" किशन ने गम्भीर हो कर कहा—"और चाँदनी उससे भी उज्ज्वल, शोभनीय!" "मगर चाँदनी तो चाँद की दी हुई भेंट है, चाँद न हो तो चाँदनी कहाँ?" सुभाषनी ने कहा. किशन ने उसके करीब कदम बढ़ाते हुए कहा, "पर चाँद और चान्दनी का सम्बन्ध ··अटूट है···· सुभाषनी, क्या हमारा भी रिश्ता इसी तरह अटल रहेगा?" दो दिलों की धड़कन जैसे एक हो गई. गर्म साँसें एक साथ चलने लगीं. दो बदन एक रूह में ढल गए.

"हाँ, किशन," सुभाषनी बोली, "आज की रात, आज का यह वायदा अटल रहेगा." किशन ने अपना सिर उसके कन्धों पर झुका दिया और बोला—"राहे-वफा पर हम हमेशा सिर झुकाए रखेंगे. तुम्हारी राहें अलग तो न होंगी? दौलत की दीवार तो बीच मे न अड़ेगी? कहीं उलट पड़े तो जीवन एक चलती लाश···बस फिर तो मौत से ही···." किशन, एका-एक 'तुम' पर उतर आया था. अभी बात पूरी भी न हुई थी कि सुभाषनी ने उसके लबों पर हाथ रख दिया और कहा, "किशन मेरे सामने कभी ऐसी बात मत करना, मुझे दुख होता है". उसकी आँखों से आँसू की बूँदें टपक पड़ीं. किशन ने आँसू पोंछे, जी थमाया और दोनों प्यार की बुलदियों पर चढ़ने लगे. चीड़ के वृक्षों को पार करके वह एक पत्थर के करीब पहुँचे और वहीं एक-दूसरे का सहारा लिए बैठ गए. वहाँ से दूर तक खुले मैदान में फिर सुन्दर पर्वतमाला का आकाश से मिलन नजर पड़ता था. सुभाषनी ने यह दृश्य देख कर उत्सुकता से कहा—"ओह! कितना सुन्दर वातावरण है! एक कवि की कल्पना, लेखक की भाषा और चित्रकार की कला-सा··· अगर मैं चित्रकार होती तो इन सुन्दर नज़ारों को रंगों में ढाल देती!" यह बात उसने जानबूझ कर कही थी, कि किशन के मन के भाव कैसे मेरे शब्दों से टकराते हैं, और चित्रकार होने का रहस्य वह स्वयं बताता है या नहीं. परन्तु, किशन ने कुछ न कहा. इस पर सुभाषनी फिर दोबारा स्वयं

बोल उठी—"कितने महान होते हैं कलाकार ! प्रशंसा का कोई शब्द मेरे मुँह में नहीं आ रहा है." किशन इस पर बोल उठा—"तुम ठीक कहती हो परन्तु कलाकार से भी महान प्रशंसक होता है जो कला पर सही-सही टिप्पणी करता है, कलाकार के भावों को अनुभव करता है, समझता है. सौन्दर्य-बोध बहुत बड़ी कला है. इस संसार में हम सब कलाकार हैं, पर भिन्न-भिन्न रूप में." सुभाषनी यह सुनकर बहुत प्रभावित हुई, "क्या आप लेखक और कवि भी हैं ?"

"हाँ, तुम ठीक समझीं, मैं लेखक हूँ पर कहानी, मेरी खुद की जिन्दगी, और कविता, रोटी की तलाश ! एक गरीब की जिन्दगी केवल इतने तक ही सीमित होती है."

"किशन, एक बात कहूँ ! आपको समझना उतना ही कठिन है, जितना कि एक नारी-हृदय को. खैर, छोड़ो. एक बात बताओ, क्या रास्ते में कालेज जाते हम रोज नहीं मिल सकते ? हम इकट्ठे जाया करेंगे". "मिल सकते हैं पर डरता हूँ"—किशन ने कहा.

"किससे ?"

"तुम्हारी बदनामी से ! मेरा तो क्या, एक तो मामूली आदमी हूँ, दूसरे लड़का हूँ. तुम एक उच्च कुल की हो, कहीं आँच न आ जाए. दुनिया बहुत संगदिल है, सुभाषनी !"

सुभाषनी ने तनिक विचार करके कहा—"ठीक कहते हो तुम, पर हम तो एक-दूसरे के हैं—अच्छा अभी एक-दो बार तो इम्तहान से पहले मिलने की कोशिश करना".

इतने में दूर से आती हुई गाड़ी की रोशनी दिखाई दी. सुभाषनी बोली—"ड्राइवर आ गया है, अब तो चलना होगा." "कहाँ था आपका ड्राइवर ?" "जरा शहर भेजा था. कुछ दिन पूर्व तस्वीरें खरीदी थीं, उनके पैसे देने के लिए". बातें करते-करते वह सड़क पर पहुँच गये. गाड़ी रुकी और ड्राइवर बाहर आया. सुभाषनी के साथ अजनबी को देख कर चौंक गया. उसके भाव को अनुभव करती हुई सुभाषनी बोल उठी—"यही हैं वो रामू काका, जिनकी बात मैंने रास्ते में आपसे की थी". यह सुनकर ड्राइवर ने हाथ उठाकर नवयुवक को नमस्कार किया. ड्राइवर गाड़ी की

सीट पर जा बैठा और गाड़ी स्टार्ट करने का प्रयत्न कर रहा था. सुभाषनी जाने की तैयारी में किशन के नजदीक आकर बोली, "इजाजत है ?" किशन ने कहा, "सुभाषनी, काश ! इस जिन्दगी में तुम्हें रोकने के अधिकार प्राप्त·····". सुभाषनी 'गुड नाइट' कहती हुई मुस्कराई. किशन ने हाथ हिलाते हुए उसे विदा किया.

यूँ ही दिन बीतते गये, परीक्षाएँ भी समीप आ गयी थीं. किशन रात-रात-भर दिये की लौ मे बैठा पढ़ता रहता. कभी बीच-बीच में जी उकता जाने पर सुभाषनी के सौन्दर्य के मधुर सपनों का चित्र उसकी आँखों के सामने छा जाता. फिर उसकी कल्पना में नाना प्रकार की विचारधारा में डूब जाता. ऐसी ही स्थिति उस नवयुवती की थी, जिसके हृदय में प्रेम-फुहार फूट-फूट कर बह रही थी. उसके कल्पना के आँचल को किशन की याद कई रंगों मे रंग देती. घण्टों अपने मीत की याद में खोयी, मदमस्त नयनों के आगे वही भोली-सी किशन की मूर्ति आ जाती, फिर किया हुआ वार्तालाप. बीच में एक बार टकराव भी हो गया था जबकि किशन कालेज को जाते हुए रास्ते पर सुभाषनी को मिला था. परन्तु समय की कमी से बात अधिक न हो सकी थी.

आज अन्तिम पर्चा था. किशन बहुत ही प्रसन्न था. उसके जीवन की एक मन्ज़िल आज समाप्त होने को थी. परीक्षा अच्छी हुई थी. आखिरी पर्चा भी अच्छा हो गया. जब वह परीक्षा-हाल से निकला तो अपने आपको बहुत हल्का महसूस कर रहा था. जैसे उसके बदन पर से कोई बहुत भारी बोझ उतर गया हो और अब नये रास्ते की तलाश में हो.

किशन अपने विचारों में खोया घर की ओर बढ़ रहा था. उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह किसी आर्टस् कालेज में कोई चित्रकारी की डिग्री हासिल करे. फिर अपना स्टूडियो खोलकर अपनी हर कल्पना के रंगों से हूबहू उत्तर दे. फिर एक रोज एक बहुत बड़ा कलाकार, चित्रकार—जिसकी हर तस्वीर एक महिमा की मूर्ति, पूजा का भण्डार, दर्शन का संगम ! पर मजबूरी के आगे हर मनुष्य सिर झुकाता रहा है. उसे दो पहर की रोटी हासिल करनी है, माँ की देखभाल करनी है. आखिर वह कब तक कष्ट सहती रहेगी. उसे तो एक नौकरी की आवश्यकता है, पैसे

की जरूरत है. कहाँ उसके सपने और कहाँ उसकी यथार्थ स्थिति ! —बिना सहारे कौन, कब तक, कहाँ तक लड़ सकता है जिन्दगी के भयंकर तूफानों से. इसी प्रकार खोया-सा जा रहा था कि किसी आवाज ने उसके ख्यालों को भंग कर दिया—"किशन !" यह सुभाषनी थी. "ओह तुम यहाँ ? क्या कार खराब हो गयी है ?"

"नहीं किशन, ये तो इन्तजार में खड़ी है. याद है, आज आपने वादा किया था मिलने का. बस कब से यहीं खड़ी राह में आँखें बिछाये बैठी थी कि कब आते हो." किशन ने कहा, "मगर सड़क पर किसी ने···." अभी बात पूरी भी न हुई थी कि सुभाषनी कहने लगी—"जी हाँ, बहुत परेशान हुई. जो कोई निकलता, घूर कर देखता. कई नवयुवकों ने जाते-जाते व्यंग-भरे शब्द कहे, एक सरदार जी तो पास ही आ गए. कहने लगे—"क्यों सोणिये, जे गडी खराब हो गई तां कहो कन्धे ते बिठा लै चलां !"

किशन ने पूछा, "तुमने क्या जवाब दिया ?" सुभाषनी बोली—"मैंने क्या, बस इतना ही कहा—हुण कि लोड़ हैगी कन्धे ते बिठाण दी, पर जदों मेरी डोली निकलेगी मैंण नूं जरूर अपणा कन्धा देण आणां—क्यूँ भरा जी, आओगे न ?" यह सुनकर किशन मुस्करा दिया और कहा—"तुम तो बहुत तेज हो."

सुभाषनी ने कार का इंजन-बाक्स बन्द करते हुए कहा—"किशन, चलो आज बहुत-सी बातें करनी हैं तुम से—इतने दिन दूर रहे हो—कहीं एकान्त में बैठ कर जी भर कर बातें करेंगे." फिर गाड़ी के पहिये घूमे और दौड़ती गाडी अकेली सड़क की दूरी को चीरती हुई आगे बढ़ रही थी. रास्ते में बायीं तरफ फिर कच्चे पर काट ली, जो कि दूर खलिहान को चीरता हुआ रास्ता एक पहाड़ी के दामन में छुप जाता था. पहाड़ी के बाईं ओर से कल-कल करता पानी बह रहा था. ऊँचे देवदार के पेड, शीतल पवन, कुछ जादू-सा था इस वातावरण में. दोनों कई घण्टे बैठ कर, एक-दूसरे की आँखों में आँखें डाले बातें करते रहे. फिर उठकर दरिया के किनारे जा बैठे. "किशन, अब आगे क्या इरादा है, क्या करोगे ?"

"सुभाषनी, इरादे तो बहुत लम्बे-चौड़े हैं पर बिन साधन अपनी मंजिल पर न पहुँच सकूँगा." शाम की छाया बढ़ती ही जा रही थी. दिन

डूबने का उन्हें अपनी बातों में पता ही नहीं चला. तब दोनों कार में बैठकर वापस चल पड़े.

रास्ते में कई बार कच्ची सड़क पर ऊँची-नीची जमीन आने के कारण उनके शरीर उछल पड़ते और एक-दूसरे का स्पर्श पाकर दोनों के बदन में जैसे बिजली की तरंग-सी उठ जाती. सुभाषनी किशन को छोड़ने उसके गाँव के पास वाले मोड़ की ओर बढ़ रही थी कि अचानक किसी रहस्य की याद आते ही उसने कहा—"किशन, जो असली बात है वह तो भूल ही गई. परसों मेरा जन्मदिन है, आओगे न ?" किशन ने उसकी तरफ मुँह करते हुए कहा, "तुम बुलाओ, हम न आयें, हमारी कब ऐसी मजाल हो सकती है !"

किशन की मंजिल करीब आ चुकी थी, गाडी को ब्रेक लगाते हुए सुभाषनी ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा— 'मैं ड्राइवर को यही लेने भेज दूंगी."

—मैं चलूं ? जी तो नही चाहता पर···. इतना कहकर वह चुप हो गई. किशन गाडी से उतर गया. सुभाषनी टकटकी लगाए देख रही थी. उसने फिर दोबारा गाड़ी स्टार्ट की और कहा—"अच्छा किशन, भूलना नही. बाय." और गाडी आगे बढ गई.

किशन जब घर पहुँचा तो शाम हो चुकी थी. आज वह प्रसन्न नजर आ रहा था. कमरे मे प्रवेश उसने दबे पाँव किया, जैसे चोरी करने जा रहा हो उसकी माँ चूल्हे के पास बैठी खाना बना रही थी. उसने चुपके से माँ को जोर से हाथों में ऊपर उठा लिया. माँ ने कहा—"अरे, आ गया तू ! क्या कर रहा है ? आज बहुत खुश नजर आ रहा है !" "हाँ माँ—मैं आज बहुत खुश हूँ"—उसने अपनी माँ को हाथों से उतारते हुए कहा—"जानती हो माँ, क्यूं ? आज जिन्दगी का एक बड़ा बोझ उतर गया है. परीक्षा खत्म हो गई. माँ,अब कोई नौकरी तलाश करके, आपके जितने दुख हैं, सब धीरे-धीरे दूर कर दूंगा—अब तुम्हें ज्यादा कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा माँ." माँ ने स्नेह-भरी दृष्टि से कहा—"बाकी बातें बाद में सोचना, सुबह से कुछ नहीं खाया है, चलो थोड़ा खाना खा लो." किशन के हाथ धुलाकर माँ ने खाना परोस दिया, वह खाने बैठ गया. किशन की माँ उसे बड़ी

गहरी दृष्टि से देख रही थी.

एक माँ ममता के रूप में देवी की मूर्ति का प्रतीक है—कितना स्नेह, प्रेम और सहानुभूति छुपी है उसके हृदय के अन्दर. तभी तो औरत का दर्जा इतना पवित्र व उज्ज्वल है. स्वयं कष्ट सह कर, जिन्दगी का हर बोझ उठाकर आग के अँगारों पर चल कर भी जरा-सी आँच नहीं आने देती.

खाना खाकर किशन उठा. रात बढ़ती गयी. बातें करते हुए माँ-बेटा निद्रा की गोद में समा गए.

तीसरे रोज किशन सुबह ही उठा, काम निपटा चुकने के बाद रसोई-घर में अपनी माँ के पास जाकर कहने लगा—"माँ, जल्दी से थोड़ा नाश्ता करा दो, बाहर जाना है. मेरे एक दोस्त का जन्मदिन है, बड़े आदर से बुलाया है उसने." पर माँ ने स्नेह-भरी दृष्टि से कहा, "ठीक है, उसने इज्जत से बुलाया है तो अवश्य जाओ." किशन ने जल्दी से नाश्ता किया और अपने कमरे में जाकर कपड़े बदल कर बरामदे में पहुँचा. उसकी नजर तुलसी पर लगे गुलाब के पौधे पर पड़ी. वह उस तरफ बढ़ा और फूल तोड़ने को हाथ बढ़ाया परन्तु यकायक उसका हाथ रुक गया—उसके मस्तिष्क में विचार आया कि बिना माँ की आज्ञा के इस पौधे से फूल तोड़ना वर्जित है क्योंकि आज तक उसकी माँ ने इस पौधे का फूल तोड़ने के लिए किसी को आज्ञा न दी थी—कारण, यह फूल हर रोज वह पूजा के समय सुबह-शाम ईश्वर के पवित्र चरणों में स्वयं रखती थी. पौधे की परवरिश वह बहुत श्रद्धा भाव से करती थी.

किशन ने माँ के पास जाकर पूछा—"माँ, आज उस पौधे का एक फूल तोड़ लूँ ?' माँ ने प्रश्न करते हुए कहा—"क्यूँ ? जानते हो उसका फूल कोई नहीं तोड़ सकता—यह पवित्र फूल भगवान के चरणों के अलावा कहीं नहीं जा सकते."

किशन को शायद पहली बार जीवन में माँ ने निराशाजनक उत्तर दिया था. यह सुनकर किशन ने नम्रतापूर्वक कहा, "ओह ! समझा माँ; मगर मैं भी तो यह फूल देवी को अर्पण करना चाहता था—सोचा, उस देवी को स्नेह से यह पवित्र फूल सौंप दूँगा." माँ ने उत्तर दिया—"ठीक है,

अगर ऐसी बात है तो पूछने की क्या जरूरत थी. तोड़ लो अगर बूटे को आंच न आए और ज्यादा मत तोड़ना."

किशन ने पौधे पर से फूल तोड़ कर लिफाफे में सम्भाल कर रख लिया और जाते-जाते कहने लगा—"अच्छा मां—मैं जा रहा हूं."

जब किशन सड़क पर पहुंचा तो ड्राइवर कार खड़ी किए वहां उसका इन्तजार कर रहा था. वहां पहुंचते ही ड्राइवर ने कार स्टार्ट करते हुए कहा—"काफी देर से आपका इन्तजार कर रहा था."

किशन ने कहा—"रामू काका, जरा देर हो गई. थोड़ा काम था घर पर."

कुछ ही देर में कार एक बड़े लोहे के गेट के पास पहुंची. गेट खुला था और चौकीदार खड़ा था—ड्राइवर ने कार एक तरफ मोड़ते हुए खड़ी की और उतर कर कहने लगा—"आओ किशन बाबू !"

किशन गाड़ी से नीचे उतरा और ड्राइवर के साथ आगे चला. दाहिने और बायें तरफ ऊंची नीलकंड चारों तरफ बराबर कटी थी. गेट में सुनहरी पेण्ट लगा हुआ था. बाईं ओर ऊंचे कतार में सफेदे के वृक्ष और उनके नीचे गमलों में नाना प्रकार के फूल खिले थे. पेड़ों के आगे घास का हरा मैदान जो कि बीच से समतल खुदा हुआ था. बीच में नैट लगा हुआ, शायद यह खेल का मैदान था. दाहिनी ओर एक छोटा-सा तालाब बना था, जिसके मध्य में एक फव्वारा, जिससे पानी की बूंदें खेलती हुई फूट-फूट कर बाहर गिर रही थीं. बगीचा अति आकर्षक था. जैसे ही बगीचा समाप्त होता था दूसरा छोटा गेट जिसके दोनों सिरों पर घने ऊंचे दो देवदार के वृक्ष थे और सामने एक बहुत बड़ा बंगला. किशन यह सब देख-कर चकित हो रहा था और मन में विचार कर रहा था···उफ ! कितनी अमीर है सुभाषनी. पर इतना सब-कुछ होते हुए भी मन पवित्र, विचार साधारण. कितनी नेक है वह ! इतने में वह बंगले की सीढ़ियों के पास पहुंचा. जब उसने नजर घुमा कर देखा तो चारों ओर बंगला सजा हुआ था. बेल-बूटे और कई अन्य प्रकार की आकर्षक चीजें लगी हुई थीं. जब वह अन्तिम सीढ़ी पर पहुंचा तो लोगों की बातचीत की आवाज उसके कानों में पड़ी.

लोग शायद सुभाषनी के जन्मदिन पर बधाई देने आये थे. उसकी नजर हाल के पास बड़े दरवाजे पर पड़ी. सुभाषनी दरवाजे के बाहर उसी की राह देख रही थी. किशन को देख कर उसका चेहरा खिल उठा. मुस्कराती हुई बोली, "कितनी देर लगा दी ! तुम्हारे इन्तजार में कब से खड़ी हूँ. आओ, चलो तुम्हारा परिचय अपने मम्मी-डैडी से करा दूं ?" यह कह कर वह उसे बड़े हाल में ले गई जो कि रोशनी से जगमग-जगमग कर रहा था. अन्दर कई आदमी आये थे इस शुभ अवसर पर. बेटर सफेद पोशाक मे इधर-उधर मेहमानों की देखभाल में मग्न थे. हाल के अन्दर अजीब-सी छटा थी, वातावरण व्यस्त महसूस हो रहा था.

सुभाषनी ने उंगली उठाते हुए कहा—"वो देखो मेरे मम्मी-डैडी, अपने हम-उमर बूढ़ों से बातचीत करने में मग्न हैं. चलो बाद में मिला दूंगी." सभी अपनी-अपनी बातों में मग्न. जहाँ से सुभाषनी गुजरती हर आदमी व स्त्री उसे शुभ कामनाएँ देते हुए किशन की ओर एक अद्भुत नजर से देखते. सुभाषनी किशन को एक कोने में ले गई, जहाँ केवल दो अत्यन्त सुन्दर कुर्सियाँ लगी हुई थीं. एक टेबल पर वह दोनों बैठ गए.

—"धूप में आये हो, कहो क्या लोगे ?" किशन ने दबे हुए स्वर में कहा—"कुछ भी."

बैरे को संकेत करते हुए उसने ज्यूस लाने को कहा. पलभर मे दो खूबसूरत चाँदी के पात्रों मे ज्यूस आ गया. सुभाषनी के संकेत पर फ्लोर पर बैठी आरकेस्ट्रा पार्टी ने वातावरण को अंग्रेजी संगीत की धीमी-धीमी धुन मे लोगो के मन पर जादू कर दिया. नजरें मिली. संगीत धुन समाप्त हुई. सुभाषनी की मम्मी किशन और सुभाषनी के टेबल के पास आकर बोली—"बेटी, तुम्हारे मेहमान लगता है, आ गये हैं ! अब केक काटने की रस्म शुरू करें."

सुभाषनी ने परिचय कराते हुए कहा, "माँ, यही हैं किशन जिनका मैं जिक्र करती थी." किशन ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया. इसका जवाब देते हुए उसकी माँ ने प्यार जताया. केक काटने की रस्म पूरी हुई. हर तरफ से सुभाषनी को हर एक से शुभकामनाएँ मिल रही थीं. हाल से आवाज गूँजी—"हैप्पी बर्थ डे टू यू—." सुभाषनी ने किशन का परिचय

अपने डैडी से भी करा दिया. इसके पश्चात् फिर हाल मधुर संगीत की ध्वनि से गूँज उठा. लोग जोड़े-जोड़े में फ्लोर के ऊपर इंग्लिश धुन पर बालरूम डान्स मे व्यस्त हो गये. उसके पश्चात् कोकटेल पार्टी—हर तरफ से यही आवाज गूँज रही थी—"बीयरज फार सुभा"—और बूढ़ों की पार्टी अलग बैठी थी जो कि कह रहे थे—गौड ब्लेस यू माई सन्नी—इसके पश्चात् बैरों ने सूप बाँटना शुरू कर दिया और खाने का टेबल लगा दिया. पार्टी खत्म होने पर धीरे-धीरे सभी जाने लगे. किशन ने भी सुभाषनी से इजाजत माँगी. सुभाषनी ने उत्तर दिया—"ऊँ हूँ—अभी तो ढेर-सारी बातें करनी हैं. आओ चलो मैं आपको अपने कमरे में बैठा आऊँ!" और वह हाल को पार करती हुई किशन को ऊपर अपने कमरे मे ले गयी और दरवाजा खोल कर बोली—"अगर एतराज न हो तो दस मिनट मे जरा मेहमानों को सी-ऑफ कर आती हूँ. दराज मे मैगजीन पड़ी है निकाल लेना और जरा थोडी देर···प्लीज." यह कह कर सुभाषनी वापस चली गयी. कमरा बडा ही सुसज्जित था—वह हर चीज का निरीक्षण कर रहा था कि अकस्मात् उसकी नजर दीवार पर लगी पेंटिंग पर गयी. इसे देख कर उसके पैर जाम हो गये, साँस रुक गयी, नजर जैसे पथरा गयी! उसकी अपनी चित्रकारी सुभाषनी के कमरे मे! विचार में डूबा एक किनारे सोफे पर सिर झुकाये बैठा रहा कि कुछ देर उपरान्त सुभाषनी की आवाज न उसे जैसे नींद से जगा दिया हो—"बोर हो गये क्या, गहरे सोच मे डूबे हो!"—किशन ने नजर उठा कर सुभाषनी की ओर बडी गौर से देखा और कहा—"नहीं खास बात नही, यूँ ही बैठा था."

"मेरे हुजूर, खास बात नही तो आम ही सही." बात बदलते रुख में फिर बोली—"क्या पसन्द आया मेरा कमरा!"

"जी बहुत अच्छा है" किशन ने केवल इतना ही उत्तर दिया.

"क्या चीज सबसे अच्छी लगी?"

किशन बोला—"यहाँ की तो हर वस्तु अच्छी है."

सुभाषनी ने उसके भावों का अध्ययन करने के लिए फिर प्रश्न करते हुए कहा—"जानते हो, मुझे सबसे प्रिय वस्तु इस कमरे की कौन-सी लगती है? वो देखो—यह जो तस्वीर है—हाय कितनी भावना-भरी चित्रकारी है! जी चाहता है जिसने इसे बनाया है उम्र-भर उसके हाथ

चूमती रहूँ"—और यह कह कर वह चुप हो गयी, उसकी निगाहें किशन के चेहरे के भावों को पढ़ रही थीं.

किशन खामोश रहा, उस पर जैसे कोई असर ही नहीं हुआ हो. यह सब सुनते हुए भी किशन ने अपनी गम्भीरता से भावों पर काबू रखा और कुछ उत्तर न दिया. सुभाषनी इस हार पर मचल कर रह गयी.

"किशन, जानते हो किसने बनाया है यह चित्र !" यह सुनकर किशन एक पल के लिये चौंक-सा गया. पर काबू रखते हुए दृढ़ स्वर में बोला—"जी नहीं." सुभाषनी यह उत्तर पाकर मौन हो गयी और उसके पास सोफे में जा बैठी. उसके मुँह को अपने हाथों से ऊपर उठाया और आँखों में आँखें डालकर कहने लगी—"किशन, तुम बहुत महान व्यक्ति हो. अपने गुणों का इज़हार न करना एक बहुत बड़ा तसव्वुर है." किशन ने गहरे स्वर में कहा—"सुभाषनी !" और उसे सीने से चिपका लिया. उसकी आँखों में आँसू आ गये और रुआँसे स्वर में कहने लगा—"काश ! हक़ीक़त बताने की हिम्मत भगवान ने मुझे दे दी होती ! पर भगवान का लाख शुक्र है कि मेरी कल्पना एक देवी के कमरे की शोभा बढ़ा रही है !" फिर उसने उसके गालों को अपने हाथ में लेते हुए कहा—"सुभाषनी, तुम मेरी कल्पना से कहीं बढ़कर हो ! तुम्हारा सौन्दर्य, प्रकृति की वह सुहानी छटा है जहाँ आज तक किसी इन्सान की पहुँच ही नहीं—यह तुम्हारा रूप···उस ऊपर वाले चित्रकार की अद्भुत करामात है !" दोनों सुध-बुध खोकर एक-दूसरे में इस प्रकार खोये थे कि जैसे जमीन-आसमान दुनिया-भर को भूल कर दूर जाकर आपस में मिल जाते हैं. सुभाषनी के नयन-कमल पँखुड़ी से बन्द थे. जब उसने नयनों को खोला, किशन के चेहरे को बहुत गम्भीर दशा में पाया और स्नेह-भरे शब्दों में कहा—"किशन, जब से मुझे पता चला है कि आप इतने बड़े कलाकार हैं, आपसे मिलने के लिये कितने ही उपाय किये, परन्तु सिर्फ यह सोचकर कि आपसे अपना एक चित्र बनवाऊँगी. जब मुलाकात हुई तो आपका अक्स हृदय के चित्रपट पर अंकित कर बैठी, आपकी आकर्षक बातों ने मेरा मन मोह लिया, मैं प्रेम-पीड़ा से व्याकुल हो उठी—अब यह दर्द इतना बढ़ गया है कि···इसका इलाज सिर्फ तुम हो." उससे किशन

के कन्धे पर हाथ रखा और उससे सट गयी और सिसकियाँ भर-भर कर रोने लगी जैसे मानों कोई नन्हा बच्चा बेसहारा ही गिर गया हो, और सहारा पाकर ही अपनी दशा बताता है, ठीक वैसा ही हाल था सुभाषनी का. किशन ने उसके मुँह को हाथों से उठा कर आँसुओं को पोंछा और एक अपार स्नेह-दृष्टि डालकर कहने लगा—"सुभाषनी, आप कितनी कोमल-हृदय हो, आपके ये नेत्र इस बात को स्पष्ट करते हैं. एक नन्ही-सी मुलाकात प्रेम-पीड़ा में कब बदल गयी, कुछ आभास नहीं हो रहा है. सोचता हूँ, कहीं ये पीड़ा, ये प्रेम, विरह के दर्द में न बदल जाय —उफ···उस वक्त क्या हालत होगी हम दोनों की—एक घायल पक्षी की भाँति जो तीर खाये पड़ा हो पर उड़ने की कोशिश में···दम तोड़ देता है अपना." सुभाषनी ने उसके मुँह पर हाथ रख कर कहा—"खुदा के लिए ऐसा न कहो, शायद वह दिन हमारे जीवन में कभी न आयेगा. हम एक-दूसरे के लिए हैं, एक-दूसरे के रहेंगे."

किशन ने सिर उठा कर कहा—"छोड़ो सुभाषनी, इस जन्मदिन की खुशी में क्या गम का किस्सा छेड़ बैठे हैं हम !"—उसने पैण्ट की जेब में हाथ डालकर लिफाफा निकाला और उसे खोलते हुए बोला—"एक छोटी-सी, पर पवित्र भेंट देना चाहता हूँ—ये फूल मेरी माँ के हाथ का सींचा हुआ प्रेम-धन है जिसे वह सिर्फ भगवान के चरणों में अर्पित करती हैं, परन्तु तुम देवी का रूप हो न···इसलिए मेरी ये छोटी-सी भेंट स्वीकार करो."

सुभाषनी ने वह फूल हाथ में लेकर कहा—"कितना सादगी का रूप—प्रेम का प्रतीक और उज्ज्वलता का भाव छुपा है इस फूल में !"—किशन ने फूल को अपने हाथों से उसके काले बादलों-से घने केशों में सुशोभित कर दिया.

काफी देर तक कमरे में बैठे दोनों बातें करते रहे. शाम को फिर एक दौर काफी का चला—सुभाषनी के माता-पिता व किशन बाहर लान में बैठे काफी का मज़ा ले रहे थे कि सुभाषनी के पिता ने किशन से प्रश्न कर दिया—"तुम्हारे पिता क्या काम करते हैं ?" प्रश्न सुनकर किशन का रक्त-प्रवाह रुक गया, मुँह का रंग सफेद हो गया. उसने गर्दन झुकाये उत्तर दिया—'जी, उनका देहान्त तो जब मैं बच्चा था, तभी हो गया

था." सुभाषनी के पिता ने काफी का कप रखते हुए कहा, "ओह ! तो परिवार में बड़ा कौन है ?"

किशन ने सूखे होंठों से उत्तर दिया, "मेरी सिर्फ माँ ही हैं इस दुनिया में."

—"ओह ! आई सी···काम-धाम क्या है ?" किशन को लगा जैसे यह प्रश्नों का धन्धा समाप्त न होगा, उत्तर में बोला—"जी थोड़ी बहुत जमीन है, हम दोनों बीज लेते हैं साल-भर रोटी का गुजारा हो जाता है."

"अब बी० ए० के बाद क्या करने का विचार है ?"

—"जी, कोई नौकरी करने का विचार है. माँ गरीब है, आगे पढ़ा-लिखा नहीं सकती." अभी उत्तर पूरा भी न हुआ था कि सुभाषनी के पिता उठ खड़े हुए—"अच्छा बेटी, हम चलते हैं." सुभाषनी के माता-पिता बंगले की ओर बढ़ गये और किशन भी उनके जाने के पश्चात् सुभाषनी से आज्ञा लेते हुए घर चला गया.

दूसरे दिन किशन सुबह ही उठा और कपड़े बदल कर खेत जाने के लिए बैलों की जोड़ी निकाल कर चल पड़ा. सुबह का भीगा-सा मदमस्त वातावरण—मखमली खेतों मे शबनम की सफेद मोती सी बूँदें-थोड़ा अंधकार थोडा-सा उजाला, अजीब-सा धुँधलापन, पर्वतमालाओं पर अठखेलियाँ करती हुई छोटी-छोटी बदलियाँ. दूर उड़ते हुए पक्षियों के झुण्ड चहचहा रहे थे, जैसे भगवान का गुणगान कर रहे हों. ठण्डी-ठण्डी शीतल वायु के झोंके, कितना ही सुहावना मनमोहक दृश्य. बैलों की जोड़ी लेकर वह खेत में हल चलाने लगा. पूर्व में लालिमा-सी छा गई और देखते ही देखते सूर्यदेव निकल आये. सारा दिन किशन व उसकी माँ खेत में काम करते रहे.

कई दिन निकल गये पर सुभाषनी और किशन की मुलाकात न हुई. एक दिन सुबह किशन खेत मे नही गया बल्कि कुछ रंग, ड्राइंग बोर्ड व ब्रुश लेकर नजदीक वाले दरिया के किनारे एकान्त जगह पर गया और प्राकृतिक दृश्य को रंगों में उतारता जा रहा था कि उसने एक युवती की परछाईं को दूर से आते हुए देखा. युवती आधुनिक ढंग के कपड़े पहने हुए थी. जब वह नजदीक पहुँची तो उसे पहचानते ही उसके हाथ से रंगों का मिश्रण छूट गया. ज्यूँ ही वह पास पहुँची उसके मुँह से शब्द निकले—"सुभाषनी, तुम यहाँ !"

सुभाषनी बोली—"क्यों हैरान हो गए देखकर ! कितने दिनों से तुम्हारा इन्तजार कर रही थी." किशन ने उसके माथे से पसीना पोंछते हुए कहा—"सुभाषनी, मुझे अफसोस है, मैं मिल न सका, पर क्या करूँ मजबूर था. खेती बोने के दिन हैं, घर पर इतना काम था बस पूछो मत ! पर तुम्हारी याद तो हर वक्त साथ ही रहती है." सुभाषनी ने बिखरे रंगों को देख कर कहा—"मालूम पड़ता है आज कोई नयी चीज बना रहे हो."—उसने सुभाषनी के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"हाँ, मगर तुमसे बेहतर नहीं !"

सुभाषनी पत्थर पर बैठ गयी और तिनके से खेलती हुई किशन की ओर देख रही थी, "क्या हमारा चित्र न बनाओगे चित्रकार जी !" किशन सुभाषनी के नजदीक गया और उसे गौर से देखने लगा. सुभाषनी बोली—"ऐसे क्यों घूर रहे हो !" किशन ने कहा—"सुभाषनी देख रहा हूँ, आपको खुदा ने खूबसूरती में इतना बेहतर तराशा है कि मैं तुम्हारे रूप को शायद अपने रंगों में नहीं उतार सकता—मेरी कलम से ऐसा सुन्दरता का बुत उतारा न जाएगा". यह सुन कर सुभाषनी का मुंह गुलाब की पंखुड़ी-सा सुर्ख हो गया और उसने शरमा कर मुंह नीचे झुका लिया. किशन बोला—"सुभाषनी, चलो घर, तुम्हें माँ से मिलाऊँ, वह तुमसे मिलकर बहुत खुश होंगी". यह कह कर वह ड्राईंग बोर्ड और रंगों को एकत्र करके चलने की तैयारी करने लगा. दोनों साथ-साथ घर की ओर जा रहे थे. आँगन के पास पहुँचते ही उसकी माँ की निगाह सुभाषनी पर पड़ी तो वह हैरानगी से चौंक उठी और मन मे विचार करने लगी, यह छैल-छबीली लड़की कौन हो सकती है ! किशन ने पास पहुँचते ही कहा—"माँ, देखो कौन आई है ?"

माँ युवती की तरफ लपकी और प्यार से कहा, "क्या नाम है बेटी ?" "जी सुभाषनी, माँजी !" 'माँ जी' का शब्द सुनते ही उसकी ममता उमड़ पड़ी और स्नेह भाव से उसे अपने गले लगा लिया और कहा—"कितना अच्छा नाम है, और कितनी सुन्दर !" माँ फिर बोली—"आओ बेटी, बैठो, मैं चाय बनाती हूँ. धूप में आई हो, पहले थोड़ा ठण्डा पी लो !"

जलपान के पश्चात् सुभाषनी ने फिर किशन से चित्र बनाने का आग्रह

किया. किशन ने चित्रकारी की सामग्री ली और माँ से अनुमति लेकर घर के पास घने चीड़ के दरख्तों की छाँव की ओर दोनों चल दिये. दृश्य अति सुन्दर था. चीड़ के दरख्तों के झुण्ड में से धीमी-धीमी पुरवाई बह रही थी जिसका संगीत कानों में मधुर प्रेम-रस भर देता था. सुभाषनी को एक ऊँचे पत्थर पर बिठा कर उसने अपना सामान निकाला. इस मस्त वातावरण में सुभाषनी का रूप इस प्रकार खिल रहा था जैसे पूर्णमासी का चाँद छोटी-छोटी बदलियों से अठखेलियाँ कर रहा हो. उसके बाल कभी-कभी हवा के झोंकों से उड़ जाते और उसके सफेद मनमोहक मुख को अपने घेरे में छुपा लेते. किशन ने उसके करीब आकर कहा—"सुभाषनी जीवन में पहली बार इतनी खूबसूरत मूर्ति उतारने जा रहा हूँ. लग रहा है इस कुदरत की बनाई महान वस्तु को शायद ही उतार सकूँ."—उसने सुभाषनी के उड़ते बालों को और भी बिखेर दिया और अपने हाथ से उसके चेहरे को दायें, बायें करने लगा. कुछ प्रयत्न करने के बाद कहा—"बस अब यूँ ही बैठी रहना". यह कहकर वह अपने काम में व्यस्त हो गया. उसका चेहरा गम्भीर हो गया. काम करते-करते दोनों सब बातें भूल गये. वातावरण खामोश-सा हो गया, केवल वायु की संगीत-ध्वनि ही सुनाई देती थी. उसने कई लकीरें लगाईं कई मिटाईं पर अभी तक चित्र न बना सका. शाम होने को आ गई. सूर्य-देव पश्चिम दिशा में शीघ्रता से बढ़ते जा रहे थे. अन्त में सुभाषनी ने ढलती हुई शाम को देख कर कहा—"किशन, शाम हो गयी है, अब कल आऊँगी." किशन का ध्यान यह सुनते ही ढलती शाम की ओर गया, उसने नजर उठाई और सुभाषनी के पास बढ़ गया और उसे बड़ी गौर से देखने लगा. फिर कुछ देर बाद कहा—"सुभाषनी, तस्वीर तो अभी अधूरी रह गयी है—कल आओगी, मगर कल और आज के दरम्यान लम्बी रात है; जिसके अन्धेरे में कभी-कभी अनसुनी, अनघटी घटनाएँ भी हो जाती हैं. ऐसा न हो कि जीवन का सबसे बेहतरीन चित्र यूँ ही रह जाए !" सुभाषनी ने उत्तर दिया—"नहीं किशन नहीं, जीवन की यह तस्वीर कभी अधूरी नहीं रहेगी, चाहे जीवन में कितनी ही भयानक रातें क्यों न आ जाएं". किशन ने उसके कन्धों पर हाथ रखते हुए कहा—'यह तुम कहती हो, मगर किस्मत को क्या मन्जूर है कौन जानता है !" सुभाषनी ने उत्तर दिया—"किशन,

छोड़ो भी इन बातों को, भ्रम का इलाज कम ही है—आप व्यर्थ बहुत सोचते हैं". दोनों हाथों में हाथ डालकर घर वापिस पहुँच गये. आते ही किशन की मां ने उन्हें जलपान कराया और सुभाषनी ने अब जाने की आज्ञा चाही तो किशन की मां ने उसे स्नेह-भरी दृष्टि से देखा और ममता उमड़ पड़ी. उसे अपने गले से लगाते हुए कहा—"बेटी, जी तो नहीं चाहता तुम्हें वापस भेजूं—पर मजबूरी के बन्धन में जो पड़े हैं". यह सुनकर सुभाषनी चुप ही रही. जाते हुए किशन की मां ने पाँच का नोट चादर की गाँठ से निकालकर सुभाषनी के हाथ में थमाते हुए कहा—"बेटी, इन्हें पैसे नहीं एक मां की ममता, स्नेह समझ कर स्वीकार कर लो". सुभाषनी नोट पकड़ते ही जोर से उसके साथ चिपक गई और कहा—"मां जी, आप कितनी अच्छी हैं".

किशन की मां ने किशन को सुभाषनी के साथ जाकर उसे छोड़ आने को कहा. दोनों साथ-साथ चल दिये. सुभाषनी रास्ते-भर किशन की मां के प्रति सोच रही थी कि कितना अच्छा स्वभाव है—कितना प्यार, स्नेह, ममता—फिर पाँच का नोट, रुपये के रूप में नहीं पर स्नेह के रूप में कितना महत्त्व था इस बात का. पल-भर की पहचान में इतना दर्द. और कभी आने वाले वक्त को सोचती जब वह दुल्हन के रूप में उस घर में प्रवेश करेगी तो हर बात उसके लिए स्वर्ग होगी. किशन का प्रेम, मां की ममता उसके आने वाले दिनों को एक खुशी की फुलवाड़ी बना देंगे जहाँ केवल प्रेम ही प्रेम होगा. सड़क पर पहुँचते ही सुभाषनी ने किशन से विदा ली और दूसरे रोज आने का वायदा कर चली गई.

सुभाषनी घर पहुँची तो पिता जी ने प्रश्न किया—"इतनी देर तक कहाँ थी बेटी ?" सुभाषनी ने पिता जी के पास आकर धीरे से कहा, "डैडी, जरा आज किशन के घर तक गई थी". यह सुनते ही सुभाषनी के पिता की धमनियों का रक्त तेजी से दौड़ने लगा, हृदयगति तीव्र हो गई. उनके मस्तिष्क में जैसे किसी ने हथौड़े की चोट लगा दी हो. उनके दिल में, जब से किशन के खानदान का पता चला था, तभी से उसके प्रति हल्केपन का भाव छा गया था. अपने गुस्से को सम्भालते हुए बोले, "देख रहा हूँ, आज-कल उसके साथ घनिष्ठता बढ़ती जा रही है···बेटी, जब औलाद बड़ी हो जाए तो उसके निजी मामलों में माँ-बाप का दखल कम होना चाहिए,

परन्तु इस वक्त मैं तुम्हें एक मित्र के रूप में कह रहा हूँ·····सुख, चैन, ऐश्वर्य में पली हो तुम. मैं नहीं चाहता सुभाषनी, तुम आने वाले जीवन को अंगारों की जलती भट्टी में उँडेल दो···". अभी बात पूरी न हुई थी कि सुभाषनी ने उत्तर दिया—"डैडी, आज जीवन में प्रथम बार आप ऐसी उलझी बातें कर रहे हैं." उसने सुभाषनी को कौच पर बैठने का इशारा किया. दोनों बैठ गये, फिर सुभाषनी के पिता ने कहा, "बेटी, इसलिए कि शायद तुम अपने आप में उलझ गई हो. इंसान को वही काम करना शोभा देता है जो उचित हो, बेहतर है तुम अपना रास्ता बदल लो". सुभाषनी ने फटे हुए स्वर में उत्तर दिया"—डैडी, मुझे भी अपना भला-बुरा सोचने का अधिकार है. मैं उससे प्रेम करती हूँ. मुझे विश्वास है हम दोनों का जीवन बहुत अच्छा व्यतीत होगा.

—"नहीं बेटी नहीं, यह प्रेम एक सपने-जैसा है जो आँख खुलते ही टूट जाता है, एक जाल है, फरेब है. फिर प्रेम को तुम वो भूमिका न दो जो आजकल आम चलचित्रों में होती है. जीवन की सत्यता और चलचित्र के पर्दे में जमीन-आसमान का अन्तर है. क्या तुम एक दिन की भूख सह सकती हो ? कहने को तो सब बातें आसान हैं परन्तु करना बहुत कठिन है. पेट में रोटी न हो तो प्रेम, रोमांस सब भूख का रूप धारण कर लेते हैं." फिर थोड़ी देर चुप रह कर बोले, "बेटी, भगवान ने हर इन्सान को दिल दिया है, और दिल में प्रेम. पर प्रेम को ढूँढ़ना एक अग्नि-परीक्षा है. आदमी पग-पग पर धोखा खाता आया है. समझ लो यह तुम्हारी भूल थी."

सुभाषनी का मुँह उतर गया था, आँखें धंस गईं, और होंठ पीले पड़ गए. उसने तिलमिलाकर उत्तर दिया, "डैडी, प्यार ढूँढ़ा नहीं जाता, हो जाता है." यह कहकर वह उठ गई. सुभाषनी का पिता घण्टों इस पर विचार करता रहा—सुभाषनी को बदलना जैसे पहाड़ से टक्कर लेना था.

दूसरे दिन किशन सुभाषनी के इन्तजार में बड़ी उत्सुकता से समय काट रहा था. कभी दूर से आने वाली पगडंडी तो कभी घड़ी को देखता, पर दूर तक सुभाषनी के आने का कोई चिह्न मालूम न पड़ा. अब उसकी बेचैनी की दशा इतनी बढ़ गयी कि वह अधिक इन्तजार न कर सका. कपड़े

बदलकर स्वयं उसके घर को चल दिया. रास्ते-भर उसके न आने का कारण सोचता रहा.

गेट के पास पहुँचते ही प्रहरी ने उसे पहचान लिया और गेट खोलते हुए उसे सलाम करके अन्दर आने का आग्रह किया. किशन बगीचे को पार करके कमरे के बरामदे तक पहुँचा. सभी दरवाजे बन्द पाकर उसने बड़े दरवाजे के पास लगी घण्टी दबाई. कुछ ही देर में सुभाषनी के पिता जी ने दरवाजा खोला. किशन को बाहर खड़ा पाकर उसे अन्दर ले गये और बैठक में बैठ कर बातें करने लगे. नौकरानी से पता चला, सुभाषनी अपनी एक सहेली के साथ बाहर गई है. सुभाषनी के पिता ने किशन के कन्धों पर हाथ रखते हुए कहा, "किशन, आजकल मैं बहुत परेशान हूँ. एक ऐसी समस्या आ खड़ी हुई है जिसका हल शायद तुम कर सकते हो." किशन ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया—"यह तो मेरी खुशकिस्मती है कि मुझ सा गरीब भी आपके किसी काम आ सके." सुभाषनी के पिता ने गम्भीर चेहरा बनाते हुए कहा, "अच्छा एक बात का जवाब देना, प्रश्न बड़ा अजीब है, परन्तु मेरी समस्या से इस प्रश्न का गहरा सम्बन्ध है. यह बताओ कि अगर किसी की इच्छा हाथी पालने की हो तो उसका घर कैसा होना चाहिए ?" किशन कुछ अचम्भे में पड़ गया किन्तु बोला, "आपका प्रश्न बडा अजीब है, पर कहावत है अगर हाथी रखने का चाव हो तो घर के दरवाजे ऊँचे होने चाहिएं." यह सुनकर सुभाषनी के पिता ने कहा—"बस अब मुझे यकीन है, तुम मेरी उलझन को दूर कर सकते हो. दूसरे शब्दों में तुम्हारा कहने का मतलब है, जितनी इंसान की हैसियत हो उतने ही पाँव पसारने चाहिएँ."

"जी, यह भी. पर आप किस संदर्भ में कहना क्या चाहते हैं ?"

सुभाषनी के पिता ने उठ कर किशन को अपने साथ चलने का इशारा किया. दोनों एकसाथ घर के कई कमरे पार करते हुए एक अद्भुत कमरे में पहुँचे, जो कि चारों ओर से बन्द और अन्धकारयुक्त था. बत्ती जलाते ही कमरा जगमगा उठा. सुभाषनी के पिता बड़े धैर्य से आगे-आगे बढ़े और चाबी का गुच्छा निकाला. कमरे के दरवाजे को बटन दबाकर बन्द कर दिया. एक चाबी के गुच्छे से उन्होंने सभी अलमारियाँ खोल दीं. किसी

में नोटों की गड्डियाँ, किसी में चाँदी-सोने के ढेर, किसी में चमकते हीरे-मोती के हार और किसी में कागज़ात और चैकबुक आदि थे. किशन अपने स्थान पर पत्थर की मूर्ति बना खड़ा था. उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि बात क्या है ! सुभाषनी के पिता ने सब अलमारियाँ खोल दीं और किशन की पीठ पर हाथ रखते हुए बोले, "देख रहे हो, इससे भी कई गुणा दौलत बैंक, कारखानों, जमींदारी और अन्य कामों पर लगी है—और जानते हो, आज के जमाने में पैसे का कितना ऊँचा दर्जा है. सुभाषनी मेरी इकलौती बेटी है और तुम यह भी समझते हो कि वह प्यार के अन्धकार में डूब गई है. मैं नहीं चाहता, वह अपने आप को इस भंवर में खत्म कर दे—हम लोग इज्जत, मर्यादा वाले हैं, हर काम करने से पहले उसे इज्जत के तराजू में तोलना हमारी ज़िन्दगी का असूल है. वह लाड़-प्यार में पली है. ऐश्वर्य के सिवा उसे कोई ज्ञान नहीं, क्या तुम उसे इतनी दौलत, ऐसा जीवन दे सकते हो जो वह अभी व्यतीत कर रही है ?"

किशन कोने में खड़ा सब बातें सुन रहा था. उसके मुँह पर पीलापन छा रहा था, आँखों में लाली, जिस्म बिल्कुल सुन्न—जैसे किसी ने काट कर ठण्डे बर्फ में जाम कर दिया हो !

"अगर उसे इतना सुख नहीं दे सकते तो उसकी खुशियाँ छीनने का भी तुम्हें कोई अधिकार नहीं. भगवान के लिए उसके मासूम जीवन से मत खेलो. मेरे घर के चिराग को गुल मत करो. इसके बदले···जितनी दौलत चाहो ले लो." और वह नोटों के पुलन्दों को लेकर बाहर फेंकने लगे. उसकी दशा ऐसी थी मानो वह अपना सन्तुलन खो बैठा हो. उसने चैकबुक निकाली और किशन के करीब बढ़ कर जोर से चिल्लाते हुए स्वर में कहा—"ये लो तुम चैक के ऊपर जितनी रकम चाहो लिखो, मैं दस्तखत किए देता हूँ. जो जी चाहे ले लो, पर सुभाषनी को हमेशा-हमेशा के लिए भूलना होगा···." किशन का चेहरा कई रंग बदल रहा था. होंठ स्याह पड़ गये थे, आँखों का रंग सुर्ख हो चुका था. उसने क्रोध में जोर से अपनी मुट्ठी बन्द करते हुए कहा—"राय बहादुर, लगता है आपको दौलत का बहुत गुमान है—परन्तु मुझे तुम्हारी दौलत व तुम्हारे ख्यालात पर रहम आ रहा है—तुम और तुम्हारी दौलत तो क्या, दुनियाँ की कोई हस्ती

प्यार की कीमत न दे सकी है—न देगी. पैसा आपके लिए सबकुछ हो सकता है, पर मेरे लिए तुम्हारी दौलत कूड़ा-करकट है." उसने अपने हाथों को ऊपर उठाया, उँगलियाँ फैलाते हुए कहा—"भगवान ने दो हाथ दिये हैं—मेहनत करके जीना सीखा है, हाथ फैलाना नहीं—वैसे मैं आपका बहुत शुक्रगुजार हूँ कि आपने मुझे नींद से जगा दिया—मेरी औकात जतला कर. परन्तु दौलत का सहारा न लेकर मुझसे यूँ भी बात की होती तो बुजुर्ग समझकर आपके कदमों पर इज्जत से सिर झुका देता. आपके इतने गिरे विचार हो सकते हैं, जानकर हँसी आती है. राय बहादुर, दौलत सबकुछ नहीं." किशन ने अपना हाथ सुभाषनी के पिता की ओर बढ़ाते हुए कहा—"मर्द का हाथ बढ़ा है दूसरे मर्द की तरफ—लो, मैं वायदा करता हूँ, तुम्हारी बेटी की जिन्दगी में कभी मुड़कर भी न देखूँगा"—दोनों का हाथ मिला. सुभाषनी का पिता खड़ा सब बातें चुपचाप सुनता रहा. अन्तिम शब्द सुनते ही उसका क्रोध कुछ शान्त हो गया. किशन ने फिर कहा—"बस राय साहब, यही थी न तुम्हारी उलझन ! दरवाजा खोलो, मैं इस तुम्हारी दौलत के कीचड़ से बाहर जाना चाहता हूँ."

दरवाजा खुलते ही किशन गोली की तरह कमरों से निकलता हुआ बड़े दरवाजे के पास जा पहुँचा. सुभाषनी का पिता भी उसके साथ-साथ चल रहा था. किशन ने दरवाजा खोलने के लिए हाथ बढ़ाए कि आवाज ने उसे रोक लिया, "कुछ जलपान तो कर जाओ किशन !" उसने मुड़कर सुभाषनी के पिता की ओर देखा, उससे नजर मिलते ही किशन के होंठ खुले—'जी आपका बहुत शुक्रगुजार हूँ जो आज तक आपने मुझे इज्जत दी है. अब ज्यादा कष्ट न करें." और दरवाजा खोल कर सरपट बाहर निकल गया.

जब वह सड़क पर पहुँचा तो उसकी नजर एक कार पर पड़ी जो उसी की ओर बढ़ रही थी. कार नजदीक पहुँचते ही रुक गयी. उसमें से सुभाषनी नीचे उतर कर किशन के पास आई और कहने लगी—'हैलो किशन ! हमारे घर गये थे—बैठे क्यूँ नहीं ?" किशन उसे आज बड़ी विचित्र दृष्टि से देख रहा था. उसने ऊपर से नीचे तक सुभाषनी पर नजर डाली. उसके हृदय में जो ज्वाला प्रचण्ड थी, उगल देना चाहता था, परन्तु

उसका भोला-सा रूप, सलौना चेहरा देख कर उसके भाव शान्त हो गये. आखिर इस मासूम भोली-सी गुड़िया का क्या कसूर है. वह तो अभी बेखबर है, जीवन के संघर्ष में वह कहाँ उलझी है ! जीवन के ज्वार-भाटे की थपेड़ों का मुँह उसने अभी कहाँ देखा होगा ! मैं ही शायद भटक गया था, ऐसे सफर पर निकल पड़ा जहाँ मंजिल पर पहुँचना असम्भव हो. उसके मन में सागर के तूफान की तरह अनेक विचार टकरा रहे थे. उसने अपने चेहरे पर मुस्कराहट लाने की कोशिश की ताकि उसके मासूम हृदय को ठेस न पहुँचे—"सुभाषनी, बहुत देर बैठा पर शाम हो गयी, बड़ी मुश्किल से डैडी से इजाजत लेकर आया हूँ—वह तो आने ही नहीं देते थे पर क्या करूँ, घर में माँ का भी ख्याल रखना है." सुभाषनी ने कुछ आगे बढ़कर कहा—"जाने की कहते हो तो नहीं रोकती, हमारे सिवा और कौन है माँ का ?"

यह 'हमारे सिवा' का शब्द सुनकर किशन के बदन में बिजली कौंध गयी. वह सबकुछ भूल कर उसे अपने सीने से लगा लेना चाहता था पल-भर के लिये उसके नैनों में खोकर वह सब दु:ख-दर्द दूर करना उसकी घनेरी जुल्फों के बादलों में छिप कर संसार की समस्त बातें छोड़कर केवल म-रस की फुहार में भीग जाना चाहता था. परन्तु वह वहीं मौन पत्थर बना खड़ा रहा. उसने कोई उत्तर न दिया. सुभाषनी को जैसे कोई भूली बात याद आयी हो और एकदम ऊँचे स्वर में बोली—"किशन, तुम से वादा किया था न, आने का, मेरी एक सहेली आज विदेश जा रही थी, जरा उसे छोड़ने गयी थी. प्लीज, माफ कर दो, कल आऊँगी. फिर वह अधूरी तस्वीर बना देना." किशन ने सिर झुकाये उत्तर दिया—"सुभाषनी, रहने भी दो ! जीवन में कई चीजों का अधूरापन ही शोभा पाता है." सुभाषनी ने कार का दरवाजा खोला और कहने लगी—"चलो किशन, छोड़ आती हूँ. इसी बहाने कुछ बात करने का मौका मिल जाएगा." किशन ने गर्दन उठायी और कहा—"रहने दो सुभाषनी, मैं चला जाऊँगा." "ऊँ-हूँ", सुभाषनी ने उसे बाजू से पकड़ा और कार के अन्दर बैठ गई. उसने कार को मोड़ा और बल खाती हुई सड़कों पर कार धीरे-धीरे छोड़ने लगी. काफी देर चलने के पश्चात् सुभाषनी ने एक मोड़

पर कार को रोक कर कहा—"किशन, देखो कितना अच्छा नजारा है. ये पहाड़, बहता दरिया, झूमते खेत ! जी चाहता है कुछ देर बैठ बातें करें." दोनों उतरकर कच्चे रास्ते से नीचे बहते दरिया की ओर चल दिये. किशन ने एक प्रश्न करके मौन को तोड़ा—"सुभाषनी—दूर से देखने को यह बर्फ से ढकी पर्वतमालाएँ कितनी सुन्दर लगती हैं, पर हकीकत में अगर किसी ने उन पर विजय पानी हो तो कितनी कठिन समस्या होगी. कितना दुःख, कितना परिश्रम करने पर भी शायद कोई इन पर विजय पाने में सफल न हो." सुभाषनी ने चेहरे पर गिरे बालों को पीछे झटका दिया और बात जैसे अनसुनी कर दी. वह किशन के कन्धे पर अपना हाथ टिकाये हुए नीचे उतर रही थी. दरिया के किनारे पहुँचते ही दोनों साथ-साथ बैठ गये. सुभाषनी ने अपना सिर किशन के सीने पर टिका दिया—किशन ने भावुक स्वर में कहा—"सुभाषनी, कल रात मैंने बड़ा अजीब सपना देखा." सुभाषनी ने आँखें बन्द किये पूछा—"हम भी सुनें क्या था वह." किशन ने रुँधे हुए स्वर में कहना आरम्भ किया—"जंगल में दरिया के किनारे एक दरख्त था, उसके ऊपर एक घोंसला. उसमें बिना पंखों के एक नन्हा-सा पंछी घोंसले से बाहर अपना सिर निकाले आसमान की तरफ देख रहा था—मुझे ऐसा लग रहा था जैसे नन्हा पंछी घोंसले में मैं ही हूँ, मेरी ही आत्मा—जानती हो फिर क्या हुआ ? जब वह आसमान की ओर देख रहा था तो उसे दूर गगन की छाँव में ऊँची उड़ान में दो-तीन पंछी अति सुन्दर उड़ते दिखायी दिये—"वह पंछी बड़े मजे से हँसते-खेलते ऊपर ही ऊपर ऊँची उड़ान में उड़ रहे थे. मुझे ऐसा लगा ये पंछी जैसे तुम्हारा परिवार हो—और उनमें से एक पंछी के रूप में आप हो, हाँ, सुभाषनी तुम; उस नन्हे से बिना पंख के पंछी की आरजू हुई कि वह भी इस ऊँची उड़ान में उड़ने वाले गिरोह में शामिल हो जाये. उनके साथ जीवन में रंग-रेलियाँ करे—वह अपनी निर्बलता को भूल बैठा. उसने अपना शरीर घोंसले से उड़ान के लिए बाहर निकाला. ज्यूँ ही घोंसले से बाहर निकाला, जमीन पर गिर गया. जानती हो क्यूँ ? क्योंकि उसके पंख न थे और फिर तड़प-तड़प कर दम तोड़ने लगा. पर उसकी निगाह अभी तक भी उन आकाश में उड़ते पंछियों पर जमी थी. इतने में मेरी नींद

खुल गयी मैं होश में आ गया."

सुभाषनी ने लम्बी-सी आह भरी और जोर से किशन को अपने गले से लगा लिया, "हाय···कितना दर्द-भरा सपना था! बेचारा पंछी!" किशन ने फिर अभिनय किया—"सुभाषनी, एक बात पूछूं! तुम सबसे ज्यादा इज्जत किस इन्सान की करती हो जिसके आगे तुम्हारी आँखें इज्जत से झुक जाती हैं?" सुभाषनी बोली—"सच कह दूं—सबसे ज्यादा इज्जत मैं डैडी की करती हूँ—और सबसे ज्यादा प्यार तुमसे." किशन कुछ देर चुप रह कर फिर बोला—"इज्जत और प्यार, दो शब्द, पर महत्ता किस की हो, क्या मालूम? वक्त ही बता सकता है." इतना कह कर वह खामोश हो गया. कुछ ही देर में फिर बोला, "सुभाषनी, तब तो तुम्हें जो डैडी कहें हर, हालत में स्वीकार करना चाहिये?" सुभाषनी ने बड़े अचम्भे से कहा, "किशन, आज तुम बहुत ही भावुक बन रहे हो!" यह सुनकर किशन मुस्करा दिया. वह भेद खोलकर उसको सदमा नहीं पहुँचाना चाहता था चाहे इस आग में स्वयं सुलग-सुलग कर भस्म क्यों न हो जाये.

शाम ढल गयी, सूरज छुप गया. किशन ने घर की राह ली. सुभाषनी जब घर पहुँची और उसके पिता को पता चला कि वह किशन के साथ थी तो वह अन्दर ही अन्दर बहुत दुःखी हुए. वह रात-भर विचारों में डूबे रहे कि कैसे सुभाषनी का मन किशन की ओर से बदला जा सकता है. उसे एक योजना सूझ पड़ी. उसने बीमारी का बहाना लगा कर इसी सप्ताह विदेश जाकर ठहरने का निश्चय कर लिया ताकि गुजरते वक्त के साथ उसकी बेटी का मन भी बदल जाये. परिवार में विदेश जाने की घोषणा हो गयी, तैयारी आरम्भ हो गयी, पास पोर्ट बन गये—अगले ही दिन रवाना होना था.

समय इतनी तेजी से निकल गया कि सुभाषनी को खबर तक न हुई. आज शाम ही को जब उसके डैडी ने उसे बताया कि वह भी उनके साथ जाएगी तो उसका हृदय सहम-सा उठा. उसके मन में किसका विचार आ रहा था?

दूसरे दिन सुबह ही जाने के लिए सब तैयार बैठे. जब उसके डैडी ने

उसे जल्दी से तैयार होने को कहा तो उसे ऐसा लगा, कोई उसका गला घोंट गया हो और उसके जिस्म से आत्मा निकल कर कहीं दूर किसी की तलाश में चली गयी हो. इतनी देर में उसकी मम्मी पहुँच गयी. उसने माँ की गोद में मुँह छुपा लिया और फूट कर रोने लगी. उसकी माँ सुभाषनी के सभी भाव जान चुकी थी. केवल इतना कहा—"बेटी, तुम्हारे डैडी के जीवन का सवाल है, बीमारी ही ऐसी है, केवल उसका इलाज विदेश में हो सकता है." यह सुनकर सुभाषनी ने हौसला बटोरते हुए कहा—"माँ, कब लौटना होगा वापिस." माँ ने उत्तर दिया—"न-जाने कब वापसी हो, इलाज होते वर्ष भी लग सकता है !" जाने के लिए सभी गाड़ी में बैठ गये. जाते-जाते सुभाषनी ने एक पत्र नौकर को देते हुए कहा, "किशन को दे देना."

गाड़ी देखते ही देखते हवा से बातें करने लगी. सुभाषनी जा तो रही थी, परन्तु अपनी मिट्टी की काया लेकर—उसकी आत्मा, हृदय और सपने पीछे रह गये थे. मजबूरी के बंधन में बँधी, उसका बदन उसके वश से बाहर था. कल की सुबह कहीं दूर किसी और धरती पर व किसी और गगन तले होगी—जो किशन से कोसों मील दूर होगा—परन्तु इतनी दूरी होते हुए भी वह किशन की यादें अपने साथ ले जा रही थी, जो कि बिछड़े दिनों का एकमात्र सहारा था—एक वक्त गुजारने का साधन था. उसके सपने—उसकी यादें ही अब जीवन का आश्रय बन गयीं.

किशन को नौकरी का निमन्त्रण-पत्र आ चुका था और कल सुबह ही उसे इन्टरव्यू के लिए जाना था. वह जाने की पूरी तैयारी कर चुका था. वह कमरे में बैठा सुभाषनी के बारे में सोच रहा था. वह उसे भूल जाना चाहता था, परन्तु जितना भूलने का प्रयत्न करता, उतना ही अधिक याद उसे सताती थी. वह सुभाषनी के पिता से हुए वार्तालाप को याद करता तो उसकी आत्मा विरह की पीड़ा में तड़प उठती—इतना खौफनाक दर्द—न तो दम टूटे ही न आराम व चैन की साँस मिले. इसी उधेड़-बुन में लगा था कि किसी की आवाज ने उसके ध्यान को भंग कर दिया. वह उठकर बाहर गया तो सुभाषनी के नौकर को आँगन में खड़ा देखकर चकित हो गया. फिर उसके पास जाकर स्वागत करते हुए अन्दर बैठने को कहा. उसने

बैठना उचित न जाना, खड़े-खड़े कहने लगा—"बाबू जी, क्षमा करना—समय नहीं है—जाती बार सुभाषनी ने यह पत्र आपके लिए दिया था. वह सभी आज सुबह विदेश चले गये हैं." यह सुनते उसकी पाँवों तले की जमीन खिसक गयी. समस्त संसार उसे घूमता नजर आने लगा. आँखों के दिये जैसे बुझ गये हों—वह निर्जीव खड़ा एकटक दृष्टि लगाकर नौकर की तरफ देखता रहा. उसके होंठ सूख गयी, जबान बन्द हो गयी, चेहरा कुम्हला गया. उसके सामने बार-बार यही सवाल उठ रहा था, आखिर क्यूँ वह मुझसे इतनी दूर चली गयी. क्या उसे बेबस कोई ले गया ! कभी वह नौकर तो कभी पत्र की ओर देखता. बड़ी मुश्किल से उसकी जबान से दो शब्द उतरे—"आखिर क्यों गये वो लोग ?" यह प्रश्न उसने अज्ञानता में ही पूछ लिया था—उत्तर में नौकर ने कहा—"बाबूजी, राज की बातें—राज में ही रहना अच्छी बात है". यह उत्तर सुनकर जैसे उसे चोट लगी हो. वह होश में आ गया और मुस्करा कर कहा—"चलो ठीक है—भगवान की कुदरत है···" शब्द पूरे भी नहीं हुए थे कि नौकर ने फिर वापस जाने को कहा. किशन ने उसे बैठने के लिए कहा परन्तु समय की कमी कहते हुए वह न माना तो किशन भी उसे छोड़ने के लिए उसके साथ चल पड़ा. काफी दूर तक चलता रहा परन्तु आपस में कोई दूसरी बात न हुई. किशन के दिमाग पर नौकर के कहे शब्द—"राज की बातें हैं" जोर डाल रहे थे. उन शब्दों में उसे कोई गहरा राज मालूम पड़ता था, कि कहीं मेरे और सुभाषनी के पिता के मध्य खड़ी दीवार का इसे भी आभास तो न हो गया है. फिर विचार की दूसरी लहर उमड़ पड़ती—इतना अकस्मात् विदेश-यात्रा का निश्चय—शायद वह लोग सुभाषनी को मेरी परछाईं से भी दूर रखना चाहते हों. परन्तु दूर होते हुए भी क्या वह मुझे भूल पायेगी—नहीं—कदाचित नहीं, अपितु प्रेम-बन्धन की डोर और भी पक्की होती जायेगी. तो फिर क्या—वह तो प्रेम-बन्धन की डोर को वायदा करके सदा के लिए तोड़ चुका था. परन्तु उससे भी यह बन्धन तोड़ना इतना आसान न था. किसी की बसी याद की नगरी को उजाड़ना असम्भव है. अगर नगरी लाख प्रयत्नों पर भी उजड़ जाये तो यादों के खण्डहर तो रहेंगे ही—वह तो हमेशा ज्वाला बनकर तन, मन और

आत्मा को एक मीठी याद में सुलगाते रहेंगे. परन्तु किशन को याद की बस्ती उजाड़ कर ही रहना होगा. बेशक उजड़े खण्डहरों को अपने गले से लगाकर ही जिये. वह नौकर को बहुत दूर तक छोड़कर वापिस आ रहा था कि एक ऊँचे पत्थर पर बैठकर ढलती शाम के प्राकृतिक नजारों को देखने बैठ गया. उसके जीवन की शाम ढल चुकी थी, अन्धकार छाने वाला था. दूर सफेद पर्वतमालाओं पर उसकी निगाह पड़ी जो कि घनघोर बादलों से घिरी थी. बादलों ने इन पहाड़ियों को अपने अन्धकार में छुपा लिया था. कुछ देर बाद देखते ही देखते बादल हल्के पड़ गये और फिर पर्वतमाला एकदम सामने हो गयी जिस पर अब सूर्य की किरणें अपनी सुनहरी रोशनी फेंक रही थीं. पर्वतमाला का दृश्य चमक उठा. दृश्य सुहावना लग रहा था !

इस अन्धेरे में उसे अपना अस्तित्व भी खोया-सा नजर आ रहा था. परन्तु जब यह बादल हट जाएँगे तब वह भी पर्वतमाला की भांति चमक उठेगा, एक मनमोहक रंग में. परन्तु वक्त उसे बहुत पीछे छोड़ चुका होगा, सुभाषनी उसके जीवन से जा चुकी होगी, किसी धनवान के बाहुपाश में--"उफ—कितना ऊँचा स्थान है दौलत का !"—उसके मुँह से एक दर्द-भरी आवाज निकल गई. काश—मैं भी एक धनवान होता—तो आज बेसहारा घायल पँछी के समान सुभाषनी के लिए तड़पना न पड़ता. उसने अपनी जेब से सुभाषनी-द्वारा लिखा पत्र निकाला और उसे पढ़ने लगा.

किशन,

विश्वास नहीं होता, कल का सूर्योदय मुझे तुमसे सैकड़ों मील दूर ले जा चुका होगा. कितनी अभागन हूँ मैं; जाती बार एक नजर तुम्हारा चेहरा भी न देख सकी. परन्तु फिर भी जीवन की बहुमूल्य वस्तु आपको दे जा रही हूँ, और आपसे ले जा रही हूँ, वह हैं यादें.

काश ! मैं इस वक्त अपनी मनोदशा कागज के सफेद आँचल पर शब्दों की लड़ियों में पिरोकर बता सकती—संक्षेप में कहती हूँ, मेरी दशा उस तीर खाई घायल हिरणी-सी है, जो न तो मर सके न पीड़ारहित जीवित साँस ले सके. तुम्हारी यादों की तस्वीर के सहारे विरह के दिन गुजार लूँगी, और उस दिन की उम्मीद के लिए जिन्दा हूँ, जब हम फिर,

दो बिछुड़े दिल मिलेंगे.

सिर्फ तुम्हारी,
सुभाषनी.

पत्र पढ़कर उसके नेत्र सजल हो उठे. हृदय पीड़ा से कराह उठा. भारी गले से वह कह रहा था—सुभाषनी, ठीक हुआ···तुम मुझसे दूर चली गईं—मैं तुम्हारे काबिल न था—तुम्हारा दर्द भरा दिल शायद सम्भाल न सकता. अब क्या है, जीवन नदी ने किनारों को खुद ही डुबो दिया है. चारों तरफ जल है—लहरें इतनी ऊँची हो चुकी हैं कि थमते-थमते बहुत वक्त लगेगा—तब तक शायद किनारे टूट चुके होंगे—फिर पानी दूर किसी दूसरे किनारे पर थमेगा—अच्छा हुआ जाते-जाते देखा नहीं, नहीं तो शायद ही दिल का बोझ सम्भाल पाता. हो सकता था अनकही बात जबाँ पर आ जाती. कालिमा छा रही थी, जिसमें वह स्वयं शायद डूबा जा रहा हो. इतनी घुटन शीतल पवन में भी शायद एक जहरीली लू बनकर उसका दम घोट रही हो. वह अन्धेरा होने तक वहाँ बैठा रहा फिर थका-हारा घर की तरफ धीरे-धीरे बढ़ने लगा.

दूसरे दिन सुबह ही वह माँ से आशीर्वाद लेकर शहर में इण्टरव्यू के लिए रवाना हो गया. शहर वाले अड्डे पर पहुँचते ही उसने अपना टिकट लिया और बस में बैठ गया. सफर काफी लम्बा था इसलिए उसने अटैची ऊपर छत पर रख दिया. बस में भीड़ काफी थी परन्तु समय पर पहुँचने के कारण उसे सीट प्राप्त हो चुकी थी. कुछ देर बाद बस चल पड़ी. भीड़ के कारण कुछ लोग खड़े थे. किशन की सीट के पास एक कोई सभ्य औरत बहुमूल्य वस्त्र पहने और हाथ में काले रंग का बेहतरीन कीमती पर्स लिए जगह न मिलने की वजह से खड़ी थी. स्त्री देखने में किसी उच्च कुल की जान पड़ती थी. आकर्षक काली सुन्दर आँखें, पतले गुलाबी होंठ, तीखी नाक और गहरे काले बाल, आयु यही कोई लगभग पैंतीस वर्ष होगी. बस काफी दूर जा चुकी थी पर कोई यात्री न उतरा. वह स्त्री खड़ी-खड़ी कुछ थक-सी गई थी. यूँ लग रहा था कि वह कहीं थोड़ी-सी जगह की तलाश में हो ताकि कुछ देर बैठ कर सुस्ता सके. यह देखकर किशन उठा और उस औरत से नम्रतापूर्वक कहने लगा—"लगता है, आप खड़े-खड़े थक गई

हैं; मेरी सीट पर बैठ जाइये शायद आपको कुछ आराम मिल सके." वह सुन कर स्त्री ने एक स्नेह-भरी दृष्टि उस पर डाली और उसके सुन्दर होंठ कुछ कहने को हिले, केवल इतना कह पायी—"जी धन्यावाद," और सीट पर बैठ गयी. किशन उसकी जगह पर खड़ा हो गया. कई बार वह औरत बीच-बीच में किशन की ओर एक बड़ी स्नेह-भरी दृष्टि डालती कि इस अजनबी ने सफर के इस थोड़े-से कठिन वक्त पर उसकी कितनी मदद की है. कहने को तो छोटी-सी बात है पर मामूली-सी बात भी वक्त पर एक बहुत बड़ी बन जाती है. कुछ दूरी पर जाकर एक गाँव के मध्य सड़क पर गाड़ी रुकी. बायें तरफ का यात्री वहाँ उतर गया, फिर किशन उस स्त्री के साथ ही बैठ गया. बस सड़क पर बल खाती आगे ही आगे भागी जा रही थी. काफी देर वे एक-दूसरे से बातें करते रहे. सफर लम्बा होने के कारण किशन ऊब-सा गया था. उसकी आँखों में आलस से नींद छा गई और बेखुदी में उसकी आँख बन्द हो गई. उसका सिर स्त्री के कन्धे पर लुढ़क रहा था. उसने उसे सहानुभूति-भरी दृष्टि से अपनी भुजा पर आराम से उसका सिर रख दिया. वह सोये हुए किशन के मुँह पर नजर डाल रही थी. गोरा रंग, गहरी आँखें, चौड़ा सीना, इस दशा में वह अति सुन्दर लग रहा था.

"कहाँ रहते हो ?"

किशन ने उत्तर दिया—"यहाँ से पीछे वाले गाँव का रहने वाला हूँ."

"कहाँ जा रहे हो ?"

"जी शिमला जा रहा हूँ." औरत ने फिर कहा—"ओह, मुझे भी वहीं जाना है पर शहर से कुछ पीछे करीब तीन चार मील—मैं वहीं की रहने वाली हूँ." शाम होने को आ गई, बस शिमला से पीछे एक बहुत बड़े कस्बे में रुकी. वहाँ काफी भीड़ थी. बहुत से लोग उतर रहे थे और बाहर एक लम्बी कतार यात्रियों की चढ़ने के लिए लगी थी. जल्दी में युवती वहीं उतर गई. जाते-जाते किशन ने उसे नमस्कार करके बिदा किया. फिर बस चल पड़ी. किशन की नजर काले पर्स पर पड़ी जो कि साथ बैठी स्त्री जल्दी में भूल गई थी. उसने पर्स को हाथ में ले लिया और बस में उसे खोलना तथा दूसरे व्यक्तियों को बताना ठीक न समझा. वह रह-रह

कर उस औरत के प्रति सोचने लगा कि अब भी उसे अपने परस की याद आएगी, शायद उसे मुझ पर सन्देह होगा. पर वह मुझ पर ही तो सन्देह नहीं कर सकती. अब अगर इसे लौटाना ही हो तो मैं कैसे जानूं, वह कहाँ रहती है, कौन है.

गाड़ी शिमला पहुँची. धीरे-धीरे सभी यात्री उतर गए. सबसे अन्त में किशन भी उतरा. शहर बत्तियों से जगमगा रहा था. ग्रीष्म ऋतु होने के कारण लोगों की काफी भीड़ थी. शाम की शीतल वायु में लोग इधर-उधर घूम रहे थे. किशन ने अटैची उतरवा कर वह परस अटैची के अन्दर रख लिया और एक ओर बढ़ कर टैक्सी को आवाज लगाई. ड्राइवर ने टैक्सी रोकी और किशन ने उसे किसी होटल पर चलने को कहा. पलभर में ही टैक्सी होटल के आगे रुकी. किशन को कमरा दिखाया गया और बैरे ने बिस्तर आदि लगाकर खाने के बारे में पूछा. किशन ने खाना कमरे में ही लाने को कहा. खाना खाकर उसने कमरा बन्द किया और अटैची में पड़े पर्स को निकाला, जब उसने खोलकर उसके अन्दर नजर डाली तो वह दंग रह गया. उसकी नजर पथरा गई. हाथ रुक गये. उसने नोटों को पर्स से बाहर निकाला. सौ-सौ के बहुत से नोट थे. इतनी बड़ी रकम देखकर क्षण-भर के लिए उसका हृदय पापी हो गया. मन में लोभ भर आया कि इसे अपने पास रखकर कुछ समस्यायें तो हल कर सकेगा. लौटाने की क्या आवश्यकता है ? पैसों की जरूरत है उसे और फिर माया स्वयं चलकर उसके पास आई है, चोरी तो नहीं की. किसी की जेब तो नहीं काटी. इसमें उसका क्या दोष. उसके मन में मैले विचार उठ रहे थे. उसने दरवाजे की ओर नजर डाली कि कहीं खुला तो नहीं है. वह दरवाजे की ओर एकटक देखता रहा. उसे महसूस होने लगा कि किसी की आँखें क्रोध से घूर कर उसे देख रही हैं. फिर वह आकृति सामने आ गई—उसकी माँ उसे क्रोध-भरी दृष्टि से झिझोड़ रही थी. यह देख उसकी आत्मा काँप उठी और वह डर से भयभीत हो गया. नहीं-नहीं—माँ, मुझे मुआफ कर दो. मैं लोभ में आकर यह क्या सोच बैठा ! किसी की अमानत···मैं कितना नीच हूँ. एक थोड़े से स्वार्थ के लिए आपके अमूल्य उपदेश भूला बैठा. उसने नोटों को फिर पर्स में डाल दिया. वह अपने इस तुच्छ विचार पर अपने आपको कोस रहा था.

वह सोचने लगा, मगर इसे किस पते पर जाकर लौटाए. उसने पर्स की बाहर की जेब खोली जिसमें उसे दो कार्ड मिले जिन पर पता लिखा था—मिस रचना, प्रिंसिपल एनशियंट आर्टगैलरी—और दूसरे पर घर का पता लिखा था. किशन उसका पता पाकर जैसे कोई नई खोज कर चुका हो. अब उसका भारी हृदय कुछ शान्त हुआ. 'मिस' शब्द पढ़ते ही उसे आश्चर्य हुआ. वह स्त्री अभी तक अविवाहित है ! यह कोई बड़ी बात नहीं, हर मनुष्य का जीवन अपने ढंग की अजीब-सी कहानी होता है. किस जीवन-मोड पर क्या हो जाए कौन जानता है. उसने पर्स को लौटाने का निश्चय किया.

दूसरे रोज सुबह उठा और तैयारी करके निश्चित समय पर वह दफ्तर पहुँच गया. वहाँ पहुँचते ही उसने काफी भीड़ पाई. धीरे-धीरे लोग आ ही रहे थे. भीड में अधिकतर युवक ही थे और कुछ युवतियाँ भी शामिल थीं. धूप बढ़ रही थी—लोगों ने धीरे-धीरे टोलियाँ बनाकर मैदान में बैठना आरम्भ कर दिया. किशन अकेला ही एक तरफ बैठा इस जमघट को देख रहा था जैसे आज यहाँ कोई प्रदर्शनी हो. वह किनारे पर बैठा ख्यालों मे डूब गया क्या शिक्षा को इसका दोषी ठहराया जा सकता है कि हर शिक्षित युवक केवल नौकरी की तरफ भागता है. अन्य कार्य करना तुच्छ समझता है या यह सभी उसी की तरह लाचार थे जिन्हें उनकी मजबूरी खेंच कर लायी हो. धूप बढ़ गई, युवकों के चेहरे धूप से कुम्हलाये जा रहे थे. कितनी भयानक और दर्दनाक दशा है, इन जवान चेहरों की. बेरोजगारी के थपेड़ों से यह सब टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं. कुदरत के बेरहम हाथों ये सुन्दर फूल यूँ ही मुरझा कर राख में मिल जाएँगे. काश ! इनके पेट की समस्या सुगमता से हल हो सकती तो इन्हीं मे कितने कवि, लेखक, सुधारक, साईन्सदान, कलाकार निकलते. पर भूखे पेट यह सब कैसे सम्भव हो सकता है ! इनके हर विचार की तह में रोटी का रंग है—भूख का धुँधलापन है. जब तक इन पर काबू न पा सकेंगे, बुढ़ापे की कम्पन इन सबको अपनी लपेट मे ले चुकी होगी. जीवन कितना अनमोल, कितना महत्त्वपूर्ण है···परन्तु···किशन ने नजर उठा कर देखा, सभी लोग बरामदे की ओर बढ़ रहे थे. इस प्रतिक्रिया से उसकी विचारधारा टूट गई. वह

स्वयं इसी चक्की में घुन की तरह पिसा जा रहा था. वह भी उठ कर बरामदे की ओर बढ़ गया. इण्टरव्यू आरम्भ हो गया. बारी-बारी सबकी पुकार आई. शाम ढल गई परन्तु काम समाप्त न हुआ. अन्त में परिणाम सुनाने की घोषणा दूसरे रोज के लिए की गई.

शाम को थकाहारा कमरे में पहुँच कर किशन ने स्नान आदि करके थोड़ा सा जलपान किया और पर्स अटैची से निकाल कर चल दिया. सड़क पर पहुँचकर उसने एक टैक्सी की. और बताये हुए पते की दिशा में ड्राइवर तेजी से चल पड़ा. कुछ समय के पश्चात् कालेज के सामने गेट पर टैक्सी खड़ी हो गयी. किशन किराया चुकाने के उपरांत नीचे उतरा. कालेज बन्द था. वह भूल गया था कि कहीं शाम को भी कालिज खुला होता है. पास खड़े व्यक्ति से उसने मिस रचना के निवास-स्थान की जानकारी ली. वह वहाँ से दो फर्लांग की दूरी पर रहती थी. वहाँ पहुँचते ही उसने फिर एक व्यक्ति से उसका पता पूछा. उसने उँगली का इशारा सामने बहुत बड़े बँगले की ओर करते बताया—"यहीं रहती हैं". बँगला बिजली से जगमगा रहा था और उसके चारों ओर दीवार बनी हुई थी. बीच में बड़ा गेट—वह गेट के पास पहुँचा तो चौकीदार ने रोकते हुए उसका परिचय लिया. उसने जब रचना का कार्ड उसे दिखाया तो चौकीदार ने गेट खोलकर उसे अन्दर जाने के लिए माली के साथ भेज दिया. बँगला बड़ा ही सुन्दर था. आसपास फुलवाड़ी, दूसरी ओर हरे घास का मैदान और ऊँचे वृक्षों के मध्य सुन्दर फव्वारा. सीढ़ियों के पास पहुँचते ही उसे एक युवती मिली जो कि शायद नौकरानी थी. उससे किशन ने रचना के लिए पूछा. नौकरानी उसे साथ वाले बैठक के कमरे में ले गयी. कमरा आधुनिक ढंग से सजा हुआ था और काफी आकर्षक लग रहा था. उसे वहाँ बिठाकर नौकरानी बाहर चली गयी.

दूसरे कमरे में रचना को अजनबी के आने की सूचना दी. रचना आँखें मूँदे बैठी सोफे पर सिर लटकाए किसी गहरी मुद्रा में थी. उसके सामने आलीशान टेबल पर बेहतरीन मदिरा की बोतल, गिलास और अन्य सोने-चाँदी के पात्र रखे हुए थे. उसने आँखें मूँदे हुए ही उसे कमरे में भेजने का आदेश दे दिया. किशन ने जब कमरे में प्रवेश किया तो नाना प्रकार की

बहुमूल्य वस्तुएँ, दीवार पर लगी कुछ चित्रकारी देखकर हक्का-बक्का रह गया. ऐसा प्रतीत होता था किसी राजा-महाराजा का अति सुसज्जित कमरा हो. वहाँ की हर चीज अद्भुत, मूल्यवान और देखने योग्य थी. उसने प्रणाम किया परन्तु उत्तर कुछ न मिला. रचना अभी तक आँखें मूँदे बैठी थी. नौकरानी ने किशन को दूसरी ओर बड़े सोफे पर बैठने का इशारा किया. किशन वहीं चुपचाप बैठा रहा. कुछ देर पश्चात् रचना ने आँखें खोलीं जैसे चिर पश्चात् भक्ति में लीन किसी साधु ने अपनी समाधि भंग की हो. उसने हाथ से मदिरा का गिलास उठा कर एक घूंट कण्ठ से, नीचे उतारा और दूसरे कमरे में चली गयी. वहाँ बहुत देर तक अपने स्टूडियो में ड्राइंग बोर्ड पर लगे चित्र की लकीरों को कभी मिटाती तो कभी लगाती, परन्तु मूर्ति उसकी कल्पना-सी न बन रही थी. वह कमरे में वापिस आ कर बैठ गयी और मदिरा का गिलास हाथ में उठा कर उसे एक ही लम्बे घूंट में खाली कर दिया फिर गर्दन नीचे झुका कर सोच में डूब गयी. कुछ देर पश्चात् गर्दन झुकाए किशन की ओर बिन देखे कहने लगी—"आप शायद मुझे अश्लील समझ रहे होंगे, क्योंकि मदिरा भारतीय नारी के लिए निषेध है—समाज के दृष्टिकोण में पाप है, परन्तु ये मदिरा-अमृत का घूंट मेरे लिए गंगा जल-सा पवित्र—कल्पना-लोक का सन्देश है. खैर छोड़िये !" उसने नजर उठा कर अब उस नवयुवक की ओर देखा और माथे पर जोर डालती हुई सोचने लगी—शायद कहीं पहले देखा हो. परन्तु इस समय याद नहीं आ रहा था. उसने फिर कहा —लगता है आप को कहीं देखा है.

किशन ने दबे हुए स्वर में उत्तर दिया—"जी हाँ, आपके साथ परसों बस में···" अभी शब्द पूरे भी न हुए थे कि रचना बोल उठी—"अच्छा ! अब याद आया, आपने मुझे अपनी जगह दी थी. कहिये कैसे आना हुआ ? —क्या पीयेंगे आप—थोड़ी मदिरा या कुछ और!" किशन ने उत्तर दिया—"जी धन्यवाद." और उसने रचना का पर्स सामने करते हुए कहा —"आप बस में अपना पर्स भूल गयी थीं, लौटाने आया हूँ."

वह बड़ी गम्भीर दृष्टि से कभी पर्स तो कभी किशन के मुख को देखती. उसे खोने के पश्चात् पर्स की याद ही अब आयी थी. खोये जीवन

को, और लुटे समय को भूल जाना उसकी एक आदत बन चुकी थी. उसने पर्स को हाथ में लिया और खोल कर देखा, उसी प्रकार रुपये उसमें पड़े थे. पर्स को बन्द करते हुए कहने के लिए रचना के पतले गुलाबी होंठ हिले —क्या आपने पर्स मे रकम को देखा था ?

—"जी हाँ."

"तो फिर मैं आपको क्या कहूँ, सामाजिक श्रेणी से एक कतार ऊपर इन्सानियत-भरा बुत—एक नेक आदमी—या महामूर्ख, जो यह जानते हुए भी कि पैसा आज हर घर की पहेली है, मुझे मेरी अमानत, मेरी आशा के विपरीत लौटाने चले आये!" किशन यह सुनकर रचना से बड़ा प्रभावित हुआ. उसे लगा कि वह किसी दार्शनिक से कम नहीं है. वह हाथ लटकाये जैसे सोफे से बच्चों की तरह खेल रहा था. उसने उत्तर देते हुए कहा—"हर एक का मन कपटी है—पर मन पर काबू पाना दिमाग की सूझ है. शायद इसी वजह से भगवान ने इन्सान को दिमाग दिया है, और आज इन्सान इसी शक्ति से सबसे समझदार जानवर कहलाता है. इसे चाहे भूल कहें या मेरे विचारों की जीत !"

कुछ जलपान करने के पश्चात् किशन ने वापस चलने का आग्रह किया. इस पर रचना ने उसे धन्यवाद देते हुए कहा—यहीं रहती हूँ अगर मुझे कभी अपनी सेवा के काबिल समझो तो आपका यह अहसान चुकाने का मौका मिल जायेगा." उसने नौकरानी को आवाज लगाकर किशन को कार में छोड़ने की आज्ञा दी. नौकरानी ने नौकरों के घरों की कतार के पास पहुँचकर ड्राइवर को उसे छोड़ आने के लिए कहा. ड्राइवर गैरिज में पहुँचा, एक कार निकाली और किशन के पास पहुँच कर चलने को कहा. किशन रात के अंधेरे में अपनी निगाह बंगले में दौड़ा रहा था. बंगला बहुत ही बड़ा और आलीशान था. एक के बदले तीन-तीन कारें गैरिज में देख कर किशन चकित होता जा रहा था. शायद कोई महारानी जी है ! वह अपने मन में कल्पना कर रहा था.

तीन-चार दिन बीत गये परन्तु इन्टरव्यू का कोई नतीजा न निकला. आज पाँचवे रोज नतीजा निकलने पर किशन को निराश होना पड़ा. अब उसके पास होटल का बिल चुकाने के लिए भी पैसा न था. वह कई प्रकार

के ख्यालों में डूबा, पर कोई समस्या का हल न बन रहा था. शाम ढलने को आ गयी, फिर बहुत देर पश्चात् उसे रचना की याद आयी. क्यूं न मुश्किल के समय में उसी से सहायता की विनय करूं, वह अवश्य ही मदद करेगी. काम हो जाने पर घर से उसे रकम वापस कर दूंगा. वह रचना के घर पहुँचा. पता चला कि मालकिन अभी तक कालिज से लौटी नहीं. वह प्रतीक्षा में बैठा रहा. कुछ ही देर में कार का हार्न बजा, गेट खुला और कार ने अन्दर प्रवेश किया. सामने किशन को पाकर उसका स्वागत करते हुए कहा—"कहो किशन, कैसे आना हुआ, आओ अन्दर बैठो."

किशन उसी के साथ ड्राइंग-रूम में चला गया—कुछ ही देर उपरान्त ट्रे में काफी का सामान आ गया आज यह कोई और नौकरानी थी. किशन मन ही मन विचार कर रहा था, शायद कितनी ही दासियाँ हों.

काफी का घूंट लेते हुए रचना ने फिर बात छेड़ी—"आप इतने बड़े घर में मुझे अकेला देख कर आश्चर्य में होंगे—परन्तु मुझे तनहाई पसन्द है. अगर मेरा कोई मित्र है तो केवल एक पेंसिल और रंग के दस्ते"—फिर वह चुप हो गयी. किशन यह सब कान लगाकर सुन रहा था—"चन्द वर्ष पहले मुझे जानदार चीजों से प्यार था, स्नेह था, पर अब केवल आकर्षक बेजान, बेजुबान चित्रकारी से—कम-से-कम धोखा तो नहीं देते ! बेजुबान हैं इसलिए किसी की मजबूर दशा पर व्यंग-भरे जहरीले तीर जबान से नहीं छोड सकते." और एक हल्की-सी हँसी हँस कर गहरा साँस लिया और फिर कहने लगी—"मैं एक चित्रकार हूँ—कला की पुजारिन. पर प्रेम भिखारी के लिए मेरी झोली, मेरी उमंग सदा खाली है—चाहे इसमें लाखों हीरे-जवाहारात हैं. छोड़िये—मैं तो अपना किस्सा ले बैठी. कहिए—मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ." किशन पहले तो चुप रहा परन्तु हौंसला बटोरकर कहने लगा—"जी बात यूं है कि मैं यहाँ नौकरी के लिए आया था परन्तु नियुक्ति न हो सकी—आशा से अधिक रोज ठहरना पड़ा—घर से पैसे कम लाया था—सब खर्च हो गये, कुछ होटल का किराया देना रहता है···अगर···थोड़े रुपये···मैं घर पहुँचते ही लौटा दूंगा." रचना ने प्रश्न किया—"कौन से होटल में ठहरे हो ?"